रहीम-कवितावली

(राजा) रामकुमार-प्रेस, बुकडिपो

उत्तराधिकारी—नवलकिशोर प्रेस-बुकडिपो, लखनऊ.

सुरेन्द्रनाथ तिवारी

मूल्य ।।।)

रहीम-कवितावली

अब्दुलरहीम ख़ानख़ाना (रहीम)-कृत
अद्यावधि उपलब्ध सभी पुस्तकों
और कविताओं का संग्रह

सम्पादक
सुरेन्द्रनाथ तिवारी

प्रकाशक

(राजा) रामकुमार-बुकडिपो, लखनऊ
उत्तराधिकारी
नवलकिशोर-बुकडिपो, लखनऊ.

तृतीयावृत्ति] [१९५६

मुद्रक—श्री त्रिभुवननाथ धीर
(राजा) रामकुमार-प्रेस, लखनऊ.
सन् १९५६ ई०

भूमिका

रहीम के दोहों ने हमारा ध्यान, जब हम स्कूल में पढ़ते थे, तभी से अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था। तदनुसार उसी काल से इनका संग्रह हो रहा था। इस समय हमारे दोहों का नम्बर २५० के उपरान्त पहुँच चुका था। इधर इनके कई प्रकाशित संग्रह भी हमारे देखने में आये। अपने दोहों का इन दोहों से मिलान करने पर कई ऐसी बातें मालूम हुईं जिनके कारण इस संग्रह के निकालने की हमें आवश्यकता प्रतीत हुई। अतएव रहीम की अन्य रचनाओं के संग्रह करने का भी प्रयत्न किया गया। यहाँ तक कि काशी-नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, सम्मेलन-पत्रिका, समालोचक, माधुरी, सरस्वती आदि से तथा प्राचीन प्रतिलिपियों से भी, जो कुछ हमें मिल सका है, वही आज 'रहीम-कवितावली' के नाम से पाठकों की सेवा में उपस्थित है। हमें आशा है कि यदि हमारे दयालु पाठक इसे एक बार आद्योपान्त पढ़ जाने का कष्ट उठायेंगे तो हमारे अभिप्राय का आभास उन्हें अवश्य मिल जायगा।

———



अब्दुलरहीमखाँ खानखाना

रहीम का परिचय

वर्तमान युग में हिन्दी जाननेवाला शायद ही कोई ऐसा होगा जो 'रहीम' अथवा 'रहिमन' के नाम से परिचित न हो। यहाँ तक कि स्कूल के छोटी कक्षा के विद्यार्थी भी इस नाम से परिचित हैं, और जैसा कि हमारा विश्वास है, सबको कम से कम इनके दो-चार दोहे अवश्य याद होंगे। हमारी समझ में इसका कारण इनकी सुमिष्ठ, सरल और सौजन्यपूर्ण रचना ही है।

रहीम के जीवन का परिचय देने के लिए हम सुविधानुसार इसको दो भागों में विभक्त करेंगे—एक उनका ऐतिहासिक जीवन और दूसरा साहित्यिक। इन्हीं का वर्णन क्रमशः हम आगे देंगे। इनके ऐतिहासिक जीवन की अच्छी सामग्री प्राप्त हो चुकी है। इसका श्रेय काशी के बाबू ब्रजरत्नदासजी को है। यहाँ हम जो कुछ रहीम के ऐतिहासिक जीवन के विषय में कहेंगे, वह उन्हीं के कथित जीवन के आधार पर होगा।

ऐतिहासिक जीवन

बैरमखाँ हुमायूँ का एक विश्वस्त नौकर था। हुमायूँ ने बाल्यकाल ही से उस पर अपनी कृपा-दृष्टि दिखलाई थी और धीरे-धीरे बढ़ाकर खानखाना की पदवी देकर एक उच्च पदाधिकारी बना लिया था। रहीम इन्हीं के लड़के थे। इनका जन्म संवत् १६१३ विक्रमी में लाहौर में हुआ था। इनका पूरा नाम अब्दुलरहीमखाँ खानखाना था।

हुमायूँ के मरने के समय उसके पुत्र अकबर की अवस्था बहुत थोड़ी थी। उसने अकबर को राजगद्दी पर बिठाकर सारा राज्य-भार बैरमखाँ को सौंप दिया और आप स्वर्ग-वासी हो गया। बैरमखाँ बड़ी योग्यता से राजकाज चलाता रहा। लेकिन जैसा कि कहा गया है—एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं—कुछ बैरमखाँ के स्वाधिकार से तथा कुछ अकबर के उद्धतपने से आपस में मनोमालिन्य पैदा हो गया; जिससे अकबर ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली। इस समय अकबर की अवस्था केवल १६ वर्ष की थी। यह बात बैरमखाँ को बुरी मालूम हुई और उसने विद्रोह करने की धमकी दिखाई। किन्तु कुछ बस न चलने पर क्षमा-प्रार्थना की और अकबर के आदेश के अनुसार हज करने के लिए प्रस्थान करना पड़ा। इनके साथ रहीम और उनकी माँ भी थीं। कहा जाता है कि गुजरात में पहुँचने पर एक अफगानी ने पुरानी शत्रुता के कारण बैरमखाँ को मार डाला।

जब यह समाचार अकबर को मिला तो उसने एक दूत भेजकर रहीम को उनकी माँ के साथ आगरे बुला लिया। इस समय रहीम की अवस्था केवल ६ वर्ष की थी। बादशाह अकबर ने इनकी शिक्षा और पालन-पोषण का समुचित प्रबन्ध कर दिया और इसी समय से इनका विद्यार्थी-जीवन आरम्भ हुआ। इस काल में रहीम ने पूर्ण परिश्रम और अध्यवसाय से काम किया जिसके फलस्वरूप ही इन्हें अरबी, फारसी, तुर्की, संस्कृत और हिन्दी-भाषा में समान योग्यता प्राप्त हो गई।

इनका अध्ययन-काल समाप्त हो जाने पर अकबर ने अपने एक उच्च पदाधिकारी खानेआजम की बहिन माहबानू बेगम के साथ इनका ब्याह कर दिया और संवत् १६३३ वि० में गुजरात की सूबेदारी पर इनकी नियुक्ति कर दी।

अवस्था तथा जातीयता के कारण युद्ध-कार्य में इनकी तबियत खूब लगती थी। सं० १६३५ में गुजरात के विद्रोह में इन्होंने बड़ी वीरता और बुद्धिमानी से काम किया था। थोड़ी सेना से ही एक बड़ी भारी विद्रोहियों की सेना पर हावी हो गये और उसको ध्वस्त कर दिया। इसी के सम्मान-स्वरूप इन्हें खानखाना की पदवी तथा पाँच हजार की मंसब दी गई।

इतने भारी पद पर नियुक्त होकर भी राजकाज में इनकी विशेष अभिरुचि न थी। इसी कारण अकबर ने सं० १६४० वि० में सुल्तान सलीम की शिक्षा का भार इन पर सौंपा। बहुत सम्भव है कि जहाँगीर के हृदय में हिन्दी के प्रति प्रेम इन्हीं की शिक्षा के कारण हुआ हो। इसी सिलसिले में सं० १६४७ में वाक्यात बाबरी का तुर्की भाषा से फारसी में अनुवाद किया। इस अनुवाद की उत्तमता के कारण इन्हें जौनपुर का इलाका जागीर में दिया गया। और सं० १६४६ में मुल्तान जागीर में मिला। सिन्ध के अधिकार में भी इन्होंने अपनी युद्ध-कुशलता का अच्छा परिचय दिया।

सं० १६५२ में अहमदनगर-राज्य में बड़ी गड़बड़ी पैदा हो गई। उसको शान्त करने के लिए सुल्तान मुराद के साथ रहीम वहाँ भेजे गये। दो वर्ष बाद इसमें सफलता

प्राप्त हुई और ये आगरे वापस आये । इसी साल इनकी स्त्री का देहावसान हो गया ।

सवत् १६५७ में अहमदनगर में फिर विद्रोह फैला । रहीम फिर भेजे गये । थोड़े ही काल में विपक्षियों को परास्त कर दिया । उस विजित देश का खानदेश नामक एक सूबा बनाया गया । उसका एक सूबेदार नियुक्त किया गया और खानखानाजी उसके दीवान नियुक्त हुए । जिस समय अकबर की मृत्यु हुई है, रहीम खानदेश में ही थे और अन्तिम समय अपने गुण-ग्राही स्वामी के दर्शन भी न पा सके । ये आगरे बाद को वापस आये ।

अकबर की मृत्यु के बाद राज्य-शासन-तन्तु कुछ शिथिल से पड़ गये जिस कारण दक्षिण में विद्रोह के चिह्न फिर दिखाई दिये । खानखानाजी तथा शाहजादा परवेज प्रबन्ध के लिए भेजे गये । युद्धकार्य में परवेज और खानखाना से कुछ मनमुटाव हो गया । इस पर परवेज ने जहाँगीर के पास इनकी बहुत शिकायत लिख भेजी । ये वापस बुला लिये गये । फिर भी जहाँगीर ने इनका अच्छा मान किया और इनकी मंसब बढ़ा दी । इसके बाद भी इनका आना-जाना दक्षिण में लगा ही रहा ।

सं० १६७६ में पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त में अशान्ति फैली । शांति-स्थापना के लिए शाहजहाँ और रहीम वहाँ भेजे गये । शाहजहाँ की अन्तर रुचि और ही प्रतीत हुई । नूरजहाँ बेगम, जो जहाँगीर के स्थान पर स्वयं ही राजकाज देखाभाला करती थी, इस बात का पता पा गई । वह पहले से ही इनसे कुछ असन्तुष्ट-सी रहा करती थी । उसने देखा कि दो जबरदस्त प्रति-रोधी तैयार हो रहे हैं तो उसने एक बड़ी अच्छी तरकीब सोची ।

उसने झट शाहजादा परवेज को युवराज बना दिया और महाबतखाँ को खानखाना की पदवी देकर मुकाबिले के लिए भेज दिया।

महाबतखाँ ने खानखाना को तो कैद कर लिया और इनकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गई। यह भी कहा जाता है कि इनका एक लड़का, जो उस समय आगरे में ही था, पकड़ लिया गया और बाद को मार डाला गया। यद्यपि रहीम का इसमें किंचित् भी दोष नहीं था और उन्होंने कभी भी शाहजहाँ के मन्तव्य को स्वीकार नहीं किया था; फिर भी राजकार्यों में इन बातों को कौन देखता है। सदा की बड़ाई और राजभक्ति एक चुटकी में समाप्त हो गई। परन्तु जहाँगीर बड़ा दयालु था। उसने सं० १६८२ वि० में इनको कैद से छुड़ा दिया और जागीर देकर लाहौर भेज दिया।

राज्य-शासन किसी बलिष्ठ पुरुष के हाथों में न होने के कारण तथा और कोई बस न चलने से महाबतखाँ भी बागी हो गया। उसने चाहा कि अधिक से अधिक सेना एकत्रित कर जहाँगीर को परास्त करके राज्य छीन ले। नूरजहाँ ने इसका समाचार पाते ही उसको पकड़ने के लिए खानखाना के साथ एक प्रबल सेना और असंख्य रुपया भेजा। खानखाना का स्वास्थ्य इस समय अच्छा नहीं था। मुसीबत भी कितनी अधिक पड़ चुकी थी। महाबतखाँ के विरुद्ध जाते हुए संवत् १६८६ में इनका शरीरान्त हो गया।

इनका पारिवारिक जीवन भी कोई सुख-प्रद न था। इनके चार लड़के और एक लड़की थी। तीन इनकी विवाहिता स्त्री से और एक दासी से। सबसे बड़े लड़के का नाम शाहनवाजखाँ

था। यह अपने पिता के रंग-ढंग का था अवश्य, लेकिन साथ ही अत्यन्त विषयी और सुरा-सेवी था। कहा जाता है कि अत्यंत सुरा-पान से युवावस्था में ही उसका प्राणान्त हो गया। शाहनवाज के एक लड़की थी, जिसकी शादी अन्त में शाहजहाँ के साथ हो गई थी। खानखाना के दूसरे लड़के का नाम रहिमानदादखाँ था। शाहनवाजखाँ के मरने के एक वर्ष बाद ही यह भी चल बसा। तीसरे पुत्र का नाम दाराबखाँ था, जिसकी बाबत कहा जाता है कि जब रहीम कैद कर लिये गये थे तो इसका सिर काटकर एक कपड़े से ढककर तरबूज के नाम पर इनके पास जेलखाने में भेजा गया था। चौथा दासी-पुत्र अमरुल्ला था जो कि खानखाना की ज़िन्दगी में ही गत हो गया था। इनकी पुत्री का नाम जाना बेगम था जो खानदेश के सूबेदार को ब्याही थी। इसी से मालूम होता है कि रहीम का सांसारिक जीवन सुख-प्रद न था। इनको कभी भी स्थायी शान्ति नहीं मिली।

एक बहादुर सिपहसालार के अतिरिक्त रहीम बड़े ही दानी, दयालुचित्त तथा परोपकारी थे। साथ ही बड़े ही धैर्यवान् और ईश्वर-विश्वासी भी थे। इनकी सामयिक उक्ति ही इस बात की साक्षी है जिसका प्रमाण इनके दोहों में यत्रतत्र हमें मिलता है। निम्नलिखित कुछ दोहों से हम कविवर रहीम के हृदय का परिचय देने का प्रयत्न करेंगे।

यह बात सभी जानते हैं कि रहीम एक उच्च पदाधिकारी तथा सम्पत्ति-सम्मानित महापुरुष थे। नम्र-स्वभाव तथा दयालु होने के कारण दीन-द्रव्यार्थी लोग इन्हें अकसर घेरे रहते थे। ये खुले हाथों सबको देते भी थे। अकबर के मरने के बाद

जहाँगीर के समय में जब इनकी सारी सम्पत्ति राज्य ने छीन ली तो ये बहुत समय तक इधर-उधर मारे-मारे फिरा किये। एक पैसा पास न था और खाना-पीना तक दुर्लभ था। ऐसी अवस्था में भी लोग इन्हें घेरे रहते थे। मजबूर होकर बड़े करुण स्वर में रहीम यह उत्तर उन्हें देते थे—

ये रहीम घर-घर फिरे, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छोड़ि दो, अब रहीम वै नाहिं॥

रहीम उन माँगतों से कहते हैं कि भई, अब हम भी तुम्हारे यार हो गये हैं अर्थात् तुम्हारी ही अवस्था को प्राप्त हो गये हैं। अब तो हमसे अपनी पुरानी यारी—दानी—माँगते का संबंध छोड़ दो; क्योंकि हम स्वयं अब दूसरों के टुकड़ों के सहारे रहते हैं। कितने हृदय-विदारक और करुणा-भरे वचन हैं।

दान के विषय में रहीम ने तो यहाँ तक कह डाला है कि—

तबही तक जीबो भलो, दीबो परै न धीम।
बिन दीबो जीबो जगत, हमहिं न रुचै रहीम॥

रहीम के महद्दान के विषय में एक और किंवदन्ती चली आ रही है। गंग रहीम के समकालीन तथा अकबर के सभा-कवियों में से थे। रहीम इनका बड़ा सम्मान करते थे। कहा जाता है कि एक बार कविवर गंग ने रहीम की प्रशंसा में एक छप्पय बनाकर सुनाया था। इस पर रहीम ने ३६ लाख की एक हुंडी, जो इनके सामने थी, उठाकर गंग को दे दी थी। छप्पय निम्नलिखित था—

चकित भँवर रहि गयो, गमन नहिं करत कमल बन।
अहि फनि मनि नहिं लेत, तेज नहिं बहत पवन घन॥
हंस मानसर तज्यो, चक्क चक्की न मिलै अति।
बहु सुन्दर पद्मिनी पुरुष न चहैं न करैं रति॥
खलभलित सेस कबि गंग भनि अमित तेज रविरथ खस्यो।
खानानखान बैरम सुवन, जि दिन क्रोध करि तँग कस्यो॥

ये बड़े ही सच्चे और स्वात्माभिमानी पुरुष थे। दूसरों को छल करके अथवा दुःख पहुँचा करके अपना सुख बनाना इनके सिद्धान्त के प्रतिकूल था। कहा भी है कि—

परि रहिबो मरिबो भलो, सहिबो कठिन कलेस।
बामन ह्वै बलि को छल्यो, भलो दियो उपदेस॥

सभी स्वेच्छाओं को दबाकर चुप रहना अच्छा है; भारी से भारी संकट सहना अच्छा है; और यहाँ तक कि मर जाना भी अच्छा है, लेकिन स्वार्थ के लिए दूसरों को छलना अच्छा नहीं। भगवान् ने बावन अंगुल का शरीर धारण करके ही कम बदनामी का काम नहीं किया था और उस पर भी बलि ऐसे दानी को छला—कैसा अच्छा उपदेश दिया है। छलना के ऊपर रहीम की कैसी चोखी फटकार है और कैसी भारी आत्मग्लानि प्रकाशित की है।

सत्य-प्रेमी तो ऐसे थे जिस समय अकबर के कट्टर शत्रु महाराना प्रताप महासंकट में निस्सहाय होकर स्वजात्यभिमान को अपनी पगड़ी के नीचे छिपाकर जंगल में भाग गये थे तो इनकी अवस्था को सोचकर कविवर रहीम के हृदय में बड़ा सोच

था। साथ ही ये उनके आत्मगौरव का खयाल करके मन ही मन प्रताप पर मुग्ध भी थे। उनके इस पवित्र कार्य में उत्साह बढ़ाने के लिए इन्होंने प्रताप के पास निम्नलिखित दोहा लिख भेजा था—

ध्रम रहसी रहसी धरा, खिसि जासे खुरसाण।
अमर बिसम्भर ऊपरै, रखियो निहचै राण॥

बादशाह की अप्रसन्नता होते हुए भी धर्म और धरा दोनों तुम्हारी कृति से तुमसे प्रसन्न और सन्तुष्ट हैं। धर्म तुम्हारी अटल धर्मप्रियता के कारण प्रसन्न है कि इतने संकटापन्न होते हुए भी तुम उसकी प्राण-पण से रक्षा कर रहे हो, और पृथ्वी तुम्हारी निश्चल वीरता के कारण तुमसे प्रसन्न है। अस्तु, हे राजन्, तुम अपनी स्थिति में अटल रहकर उस विश्वम्भर जगदाधार पर अपना दृढ़ और अमर विश्वास रखना।

अमी पियावत मान बिन, रहिमन मोहि न सुहाय।
प्रेम-सहित मरिबो भलो, जो बिष देइ बुलाय॥

मान का कैसा भारी महत्त्व इनके हृदय में था जिसके न होने से अमृत-ऐसा अमरकारी पदार्थ भी इनकी दृष्टि में हेय था।

परोपकार का भाव तो उनके हृदय में उमड़ा ही पड़ता था। लुत्फ यह था कि किसी का उपकार करते हुए कोई कोर-कसर बाकी न रह जाय इसके लिए यशस्वी शिवि और राजा दधीचि को ही अपना आदर्श मान रक्खा था। रहीम कहते हैं कि—

रहिमन पर उपकार के, करत न पारौ बीच।
मांस दियो शिव भूप ने, दीन्हों हाड़ दधीच॥

धैर्य को तो इन्होंने कभी हाथ से जाने ही न दिया! उन्होंने तो अपना यह सिद्धान्त बना लिया था—

जैसी परै सो सहि रहै, कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत सब, सीत घाम अरु मेह।

इन सब बातों के होते हुए भी ये राजनीति के भी पूरे ज्ञाता थे। बादशाहों को किस तरह काबू में किया जाता है, यह भी इन्हें मालूम था। कहते हैं कि—

जो नृप बासर निसि कहै, तौ कचपची देखाव।
जो रहीम रहिबो चहै, कहौ उसी को दाँव॥

नीति में तो ये बड़े ही पारंगत थे। इस विषय में जो कुछ इन्होंने कहा है खूब तौल-नापकर कहा है।

ईश्वर पर इनका पूरा भरोसा और विश्वास था। अपने हर काम को उसी पर छोड़कर करना, इनकी आदत में था। कहते हैं कि—

काम कछू आवै नहीं, मोल न कोई लेइ।
बाजू टूटै बाज को, साहब चारा देइ॥
रन बन व्याधि बिपत्ति में, डरै न रहिमन रोय।
जो रच्छक जननी जठर, सो हरि गये कि सोय॥

कितने धैर्य, शान्ति और प्रौढ़ ईश्वर-विश्वास की बात है।

यही कारण था कि रहीम भारी से भारी मुसीबत पड़ने पर भी अपने कर्म-पथ से जरा भी विचलित नहीं हुए।

ये इतने उच्च और उदाराशय के थे कि अपनी तारीफ करना तो क्या अपने मुख अपनी कृति का प्रकट करना भी पसन्द न करते थे। हमारी समझ में यह भी एक खास कारण है कि इनकी पुस्तकों की नामावली तक इनकी कविता में कहीं पाना दुर्लभ हो रहा है। इनका नाम और परिचय भी तो इनकी किसी पुस्तक के आदि-अन्त में नहीं पाया जाता। ये कहते भी तो हैं कि बड़े लोगों को अपनी बड़ाई स्वयम् करने की आवश्यकता नहीं। हीरा कब कहता है कि मेरा इतना मूल्य है। रत्न-पारखी लोग उसका मूल्य स्वयम् आँक लिया करते हैं।

बड़े बड़ाई ना करैं, बड़े न बोलैं बोल।
रहिमन हीरा कब कहै, लाख टका है मोल॥

कितने उच्चादर्श की बात है। रहीम के सभी गुण अनुकरणीय हैं। अब इस सम्बन्ध में हम अधिक न लिखकर इनके साहित्यिक जीवन का कुछ परिचय देने का यहाँ प्रयत्न करेंगे।

———

साहित्यिक जीवन

खानखाना की उपर्युक्त जीवन-कहानी पढ़कर कोई भी निश्चित रूप से यह नहीं कह सकता कि ऐसी स्थिति का मनुष्य भी एक सफल कवि हो सकता है। फिर भी, जैसा कि पाठकों को आगे चलकर ज्ञात होगा, रहीम ने इसमें आशातीत सफलता प्राप्त की है। रहीम के साहित्यिक जीवन का परिचय बहुत संक्षिप्त रूप से हमें मिलता है। इन्हें कभी साल-दो-साल शान्ति से बैठने को नहीं मिला। जिस समय शाहजादा सलीम की शिक्षा का भार इनके ऊपर था, यह मौका अवश्य अच्छा मिल गया था। इसी काल में इन्होंने वाकयात बाबरी का फारसी-अनुवाद कर पाया था। इसके अनन्तर फिर समय नहीं मिला। क्षणिक शान्ति में जो कुछ समय मिला, उसी में इन्होंने कई छोटी-छोटी पुस्तकों की रचना कर डाली। इनकी रचना में यह एक अजीब बात पाई जाती है कि इन्होंने कहीं भी उसका रचना-काल अथवा अपना नाम नहीं दिया है। इससे रहीम ने कौन-सी पुस्तक किस समय बनाई थी, यह निर्धारित करना एक असम्भव-सी बात है। इनकी रचित सम्पूर्ण पुस्तकों के नाम भी इनकी रचना में कहीं पाये नहीं जाते। अस्तु, हमें अनुमान तथा इतर प्रतिलिपियों पर ही इनकी साहित्य-भित्ति का निर्माण करना पड़ता है। इनके रचित निम्न-लिखित ग्रंथों का पता चलता है—

१. **सतसई**—कहा जाता है कि रहीम ने सतसई की

रचना की है। परन्तु अद्यावधि इसका कहीं भी पता नहीं लगा है।

हमारी राय में रहीम ने सतसई की रचना की है, यह केवल अनुमान पर ही कहा जाता है। अनुमान इसी कारण किया जाता है कि रहीम के अतिरिक्त तुलसी, विहारी मतिराम, वृन्द आदि जिन किन्हीं कवियों ने अधिकांश दोहों में अपनी रचना की है, उन्होंने सतसई पूर्ण करके ही उसे समाप्त किया है। रहीम ने भी अधिकतर दोहे ही बनाये हैं। संभव है, यही अनुमान का कारण हो। लेकिन हमारे अनुमान में रहीम ने सतसई का कोई विचार भी अपने हृदय में नहीं किया है। रहीम के प्रथम सतसई का नाम भी कहीं नहीं था। "आर्यासप्तशती" संस्कृत में तथा 'तुलसी-सतसई' हिन्दी में अवश्य रची मौजूद थीं। परन्तु आर्यासप्तशती की बाबत हम नहीं कह सकते; लेकिन तुलसी-सतसई का कोई प्रचार न था। विहारी और मतिराम की सतसई रहीम के बाद पूर्ण हुई हैं। अतः इस विचार से भी रहीम की सतसई का अनुमान शिथिल होता है। एक यह भी बात है कि रहीम को कविता करने के लिए समय बहुत कम मिला। जो कुछ समय मिला, उसी में उन्होंने कई छोटी-छोटी पुस्तकों की रचना कर डाली जिनके छन्दों की कुल संख्या भी ७०० तक नहीं पहुँचती। रहीम की रचनाओं का अनुसंधान भी इधर खूब किया गया है। यदि सतसई का कहीं अस्तित्व होता तो कम-से-कम पता अवश्य चलता अथवा उसका नाम-निशान ही कहीं मिलता। यह भी बहुत सम्भव है कि रहीम ने सतसई

के बनाने का प्रयत्न किया हो, पर अनवकाश अथवा अन्य किसी कारण से सफल न हुए हों।

खैर, कुछ भी हो, रहीम के दोहे बहुत अच्छे बन आये हैं। बहुतों में अनूठे भाव हैं। इनके भावों का अनुकरण इनके कई परवर्ती कवियों तक ने किया है। इसका विवरण आगे चलकर हम देंगे। साथ ही इनके कुछ दोहों तथा सोरठों की भाषा तथा भाव दोनों में बड़ी शिथिलता आ गई है। इसमें रहीम का कुछ दोष ठहराया नहीं जा सकता। इनकी कोई प्राचीन हस्त-लिपि मिलने पर यह दोष दूर किया जा सकता है। हमारी समझ में क्रमागत से लिखते-लिखते इनमें यह दोष पैदा हो गया है। कई दोहों का भाव भी स्पष्ट समझ में नहीं आता। कई जगह रूढ़ि शब्दों का प्रयोग हो गया है।

इनके दोहों में अधिकांश नीति का मसाला है। ऐसे दोहों की संख्या १८७ के लगभग है। १७ भक्ति और ११ शृंगार के दोहे भी हैं। इतर दोहों की संख्या लगभग ३४ के है। ११ सोरठों में ४ नीति के, १ भक्ति का, ३ शृंगार के और ३ अन्य विषय के हैं।

२. **बरवै नायिका-भेद**—यह पुस्तक पाई जाती है और प्रकाशित भी हो चुकी है। लेकिन अद्यावधि प्रकाशित सभी पुस्तकों में इसका मूल पाठ बहुत अशुद्ध निकला है। साथ ही पूर्ण भी नहीं है। हमारी पुस्तक का पाठ हरताल से शोधित पत्राकार एक प्राचीन हस्त-लिपि के आधार पर है जो लगभग १०० वर्ष से उपरान्त की है। यह बहुत अंश में पूर्ण भी है। इसमें बरवों की संख्या ११५ है। पाठ के विषय में हमें केवल इतना

ही कहना है कि इसका पाठ मेरे विचार से बिलकुल शुद्ध और मान्य है। यदि अन्य प्रकाशित पुस्तकों के पाठ से मिलान करके देखा जाय तो इसका पूरा पता चल जायगा। लगभग प्रत्येक छन्द में कुछ न कुछ अन्तर पाया जाता है। हम यहाँ पर केवल एक छन्द नमूने के तौर पर दिये देते हैं। यह लज्जिता का उदाहरण है—

अन्य प्रतियों का पाठ—

आजु नयन के कजरा, औरै भाँति।
नागर नेह नवेलिहि, सुदिने जाति॥

हमारी प्रति का पाठ—

आजु नयन के कोरवा, औरै भाँति।
नागर नेह नवेलिहि, मूँदि न जाति॥

लज्जिता का लक्षण यह है कि जिस नायिका के अंग से उसके प्रिय के प्रति प्रेम-भाव प्रकट होता हो तो उसे लज्जिता कहेंगे। यथा—

होत लखाई सखिन को, जाको पिय सों प्रेम।
ताहि लज्जिता कहत हैं, कवि कोविद करि नेम॥

—मतिराम

इस पर लक्ष्य रखते हुए यदि हम उपर्युक्त उदाहरणों पर विचार करते हैं तो हमारी प्रति का पाठ ही सम्पूर्ण लक्षणों से घटित होता है। आँखों के काजल में किसी प्रकार का परिवर्तन

एक अस्वाभाविक बात है। यह बात अवश्य है कि आँखों की स्निग्धता से उसमें ढीलापन आ जाय, लेकिन उसकी भाँति में कोई अन्तर नहीं आ सकता। साथ ही आँखों के कोयों का परिवर्तन स्वाभाविक है। चित्त-वृत्ति का उन पर पूरा असर पड़ता है। हृदय की प्रसन्नता से उनको प्रसन्नता होती है, दुःख होने से उसमें शोक प्रकट होता है। ऐसे ही स्नेह से उनमें भी स्निग्धता आ जाती है। इसी से इनमें परिवर्तन दिखाई देना स्वाभाविक है। यों तो ईंच-खींचकर प्रथम छन्द का अर्थ भी लक्षणों के अनुसार, लगाया जा सकता है। परन्तु दूसरे में बहुत कुछ मार है। साथ ही 'कजरा' और 'कोरवा' तथा 'सुदिने' और 'मूँ दि न' में कितना स्वाभाविक परिवर्तन है। क्रमागत लिखने से भी ऐसी-ऐसी भूलें हो सकती हैं।

इस विषय में यह भी एक तर्क हो सकता है कि प्रतिलिपि-कार ने अपनी ओर से ही यह परिवर्तन कर दिया हो। यह बात मानी नहीं जा सकती। कारण, ऐसे स्वाभाविक परिवर्तन सरलता से नहीं किये जा सकते। यदि उसे परिवर्तन ही करना था तो अन्य तरह से भी कर सकता था।

३. **मदनाष्टक**—यह मालिनी छन्द का एक अष्टक है। पुस्तक के अन्त में संगृहीत है। यह काशी नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित भी हो चुका है। इसके प्रत्येक छन्द का अन्तिम चरण एक है जिसमें 'मदन' शब्द का प्रयोग है। मदनाष्टक के नाम से दो और अष्टक भी पाये जाते हैं, उनमें कोई क्रम नहीं। कुछ छन्दों में ही हमारे अष्टक का अन्तिम चरण पाया जाता है। मदन का प्रयोग भी सब छन्दों में नहीं है।

इन तीनों में रहीम का रचा हुआ अष्टक कौन है, इसमें मतभेद है। हमारे अष्टक को कुछ सज्जन समस्या मानकर अन्य कवि का रचा हुआ कहते हैं। हम इस बात के कायल नहीं हैं। कारण, दूसरे दोनों अष्टकों से अष्टक की परिभाषा के अन्दर यही आता है। अष्टक, पंचक इत्यादि की रचना एक नियम से होती है। प्राय: सभी छन्दों का अन्तिम चरण अथवा अर्ध चरण समान होता है। उदाहरण के तौर पर संस्कृत में ऐसे कई अष्टक पाये जाते हैं। रहीम ने मदनाष्टक नाम रक्खा है। मदन शब्द की विशेषता होनी चाहिये। हमारे अष्टक के प्रत्येक छन्द में यह शब्द भी है। अन्य अष्टकों में इस प्रकार का कोई नियम नहीं है। पाठकों के अवलोकनार्थ हम दोनों अन्य अष्टकों को यहाँ देते हैं! इनमें एक असनी में मिला था और दूसरा सम्मेलन पत्रिका में प्रकाशित हुआ था।

असनी से प्राप्त हुआ मदनाष्टक।

(१)

दृष्ट्वा तत्र विचित्रतां तरुलतां, मैं था गया बाग में।
कांश्चित् तत्र कुरंगशावनयनी, गुल तोड़ती थी खड़ी॥
उन्नद्भ्रू धनुषा कटाक्षविशिखैः, घायल किया था मुझे।
तत्सीदामि सदैव मोहजलधौ, हे दिल गुजारो शुकर॥

(२)

कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था।
चपल चखनवाला चाँदनी में खड़ा था॥
कटि तट बिच जेला पीत सेला नवेला।
अलि बनि अलबेला यार मेरा अकेला॥

(३)

अलक कुटिल कारी देख दिलदार जुलफैं ।
अलि कलित निहारैं आपने दिल की जुलफैं ॥
सकल शशि-कला को रोशनी हीन लेखौं ।
अहह ब्रजलला को किस तरह फेर देखौं ॥

(४)

वहति मरुत् मन्दम् मैं उठी राति जागी ।
शशिकर कर लागे सेज को छोड़ भागी ॥
अहह विगत स्वामी मैं करूँ क्या अकेली ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

(५)

छबि छकित छबीली छैलरा की छड़ी थी ।
मणि जटित रसीली माधुरी मुंदरी थी ॥
अमल कमल ऐसा खूब से खूब लेखा ।
कहि सकत न जैसा कान्ह का हस्त देखा ॥

(६)

विगत घन निशीथे चाँद की रोशनाई ।
सघन घन निकुंजे कान्ह वंशी बजाई ॥
सुतपति गत निद्रा स्वामियाँ छोड़ भागीं ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

(७)

हर-नयन हुताशन-ज्वालया भस्मिभूत ।
रतिनयनजलौघे खाख बाकी बहाया ॥
तदपि दहति चित्तं मामकं क्या करौंगी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

(८)

हिम रितु रतिधामा सेज लोटौं अकेली।
उठत विरह ज्वाला क्यों सहौंरी सहेली॥
इति वदति पठानी मदमदांगी विरागी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥

सम्मेलन-पत्रिका में प्रकाशित मदनाष्टक

(१)

कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था।
चपल चखनवाला चाँदनी में खड़ा था॥
कटि तट बिच मेला पीत सेला नवेला।
अलि बन अलबेला यार मेरा अकेला॥

(२)

छबि चकित छबीली छैलग की छड़ी थी।
मणि जटित रसीली माधुरी मुन्दरी थी॥
अमल कमल ऐसा खूब ते खूब देखा।
कहि न सकत जैसा श्याम का हस्त देखा॥

(३)

अलक कुटिल कारी देखि दिलदार जुलफैं।
अलि कलित निहारैं आपने दिल की कुलफैं।
सकल शशि-कला को रोशनी-हीन पेखौं।
अहह ब्रजलला को किस तरह फेर पेखौं॥

(४)

जरद वसनवाला गुलचमन देखता था।
झुकि-झुक मतवाला गावता रेखता था॥
श्रुति युग चपला-से कुंडले झूमते थे।
नयन कर तमासे मस्त ह्वै घूमते थे॥

(५)

तरल तरनि-सी हैं तीर-सी नोकदारैं ।
अमल कमल-सी हैं दीर्घ हैं दिल बिदारैं ।
मधुर मधुप हेरैं मान मस्ती न राखैं ।
बिलसित मन मेरे सुन्दरी श्याम आँखैं ॥

(६)

भुजँग जुग किधौं हैं काम कमनैत सोहैं ।
नटवर तव मोहैं बाँकुरी मान भौहैं ।
सुन सखि मृदुबानी बेदुरुस्ती अकिल में ।
सरल सरल सानी कै गई सार दिल में ॥

(७)

पकरि परम प्यारे साँवरे को मिलाओ ।
असल अमल प्याला क्यों न मुझको पिलाओ ॥

(८)

सरद निशि निशीथे चाँद की रोशनाई ।
सघन वन निकुंजे कान्ह बंशी बजाई ।
रति-पति सुतनिद्रा साइयाँ छोड़ भागी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

———

असनीवाले के छन्द नं० ४, ६, ७, ८ हमारे अष्टक से मिलते हैं और २, ३, ५ सम्मेलन-पत्रिकावाले से । मदनाष्टक की भाषा तथा भाव में बड़ी शिथिलता है । भाव का कोई क्रम नहीं है और न उनमें पूर्णता ही है । हमारे अनुमान से इसका शुद्ध पाठ अब तक मिला नहीं है । मिलने पर यह अवश्य बड़ा मनोरंजक प्रतीत होगा ।

४. रासपञ्चाध्यायी—इस पुस्तक का अभी तक कोई पता नहीं चल सका है। सम्भव है कि अस्तित्व होने पर कभी मिल जाय।

५. शृंगार-सोरठ—कहा जाता है कि रहीम ने सोरठों की एक स्वतंत्र पुस्तक की रचना की है। परन्तु ११ सोरठों के अतिरिक्त, जो इसमें संगृहीत हैं, और सोरठे पाये नहीं जाते। इनमें भी भिन्न विषय के दोहे हैं। किस आधार पर शृंगार-सोरठ की पृथक रचना बताई जाती है, हमें मालूम नहीं है। बहुत संभव है कि सोरठों की रचना के संग्रह को ही 'शृंगार-सोरठ' नामकरण कर दिया गया हो। संगृहीत ११ सोरठों में ३ शृंगार-सोरठ के बताये जाते हैं, जिनका विवरण उनके नीचे फुटनोट में दे दिया गया है।

६. खेटकौतुक—यह संस्कृत-फारसीमिश्रित भाषा में ज्योतिष की एक पुस्तक है। इसमें कुल १२५ श्लोक हैं जिनमें नवग्रहों के द्वादश स्थानों का फलाफल दिया गया है। ज्योतिषी लोग इसका आदर करते हैं और इसका फल प्रायः ठीक होता है, ऐसा कहते हैं। यह पुस्तक प्राप्त है और कई जगह प्रकाशित भी हो चुकी है। पाठकों के विनोदार्थ इसके पाँच छन्द पुस्तक के अन्त में (देखो पृष्ठ ६०) संगृहीत कर दिये गये हैं।

इनके सिवाय रहीम-कृत कुछ और भी संस्कृत के स्फुट छन्द पाये जाते हैं जिन्हें अन्त में (देखो पृष्ठ ६५) संगृहीत कर दिया है।

७. नगर-शोभा-वर्णन—इस पुस्तक का अभी हाल में ही पता चला है। इसकी एक प्राचीन हस्त-लिपि याज्ञिकत्रय

(पं० मयाशंकर याज्ञिक, जीवनशंकर याज्ञिक तथा भवानीशंकरजी याज्ञिक) को मिल भी गई है। हमने भी पं० भवानीशंकरजी से इसकी एक कापी के लिए निवेदन किया था, किन्तु हमें न मिल सकी। फिर भी नमूने के तौर पर कुछ छन्द दे दिये गये हैं। (देखो पृष्ठ-संख्या ५५)

इसमें देश की विभिन्न जातियों की स्त्रियों की शोभा का वर्णन है। वर्णन बड़ा ही स्वाभाविक और मनोहर बन पड़ा है। सच पूछो तो रहीम ने उनका जीता-जागता चित्र ही खींच दिया है। महाकवि देवकृत 'जातिविलास' में भी इसी प्रकार का वर्णन है। देवजी परवर्ती कवि हैं। सम्भव है कि इसे देखकर ही उन्होंने जातिविलास की रचना की हो। नगर-शोभा-वर्णन में रहीम ने बड़ा मनोरंजक वर्णन किया है।

८. **खानखाना-कृत बरवै**—यह ग्रंथ भी याज्ञिक-त्रय को मिल गया है। इसमें कोई विषय-क्रम नहीं है। भिन्न-भिन्न विषयों के रचित १०१ बरवों का संग्रह है। कुछ बरवै फारसी के भी हैं। इनका नमूना भी पृष्ठ ५७ पर देखिए।

९. **वाकयात बाबरी**—यह तुर्की-भाषा की पुस्तक का फारसी में अनुवाद है। कहा जाता है, यह अनुवाद ऐसा उत्तम बना है कि इसकी प्रशंसा बड़े-बड़े अंग्रेज विद्वानों तक ने की है।

इनके अतिरिक्त रहीम के हिन्दी के कुछ स्फुट छन्द और पद भी मिले हैं। वे भी सब इसी के अन्त में (देखो पृष्ठ-संख्या ६२) संगृहीत कर दिये गये हैं।

———

रहीम की कविता

जिस समय रहीम का जन्म हुआ था, उसके प्रथम भी ब्रजभाषा की कविता का अच्छा विकास हो चुका था। कबीर, सूरदास, मीरा, तुलसी आदि अनेक भक्त-कवियों तथा चन्द और मलिक मुहम्मद जायसी-जैसे ऐतिहासिक कवियों की कीर्ति का अच्छा प्रकाश था। कविता-रसिकों तथा गुणग्राहियों के लिए यह बात कम प्रलोभन की न थी! दूसरे, हिन्दी की सहज सुन्दरता तथा मनोमोहकता पर कौन मुग्ध नहीं हुआ? बहुत सम्भव है, इन्हीं कारणों से रहीम ने हिन्दी को अपनाया हो अथवा भिखारीदासजी की उक्ति ही चरितार्थ होती हो—

"एकनि को जस ही को प्रयोजन है रसखानि रहीम की नाईं।"

कुछ भी हो, चाहे यश के प्रलोभन से हो, चाहे हिन्दी की मधुरता से, यह हिन्दी के लिए गौरव की बात है। शृंगारिक कविता का विकास इनके समय से ही हुआ। इनके जीवन-काल में ही गंग, केशव, सेनापति, बिहारी, मतिराम आदि अनेक धुरंधर कवि उत्पन्न हो गये। मुसलमान कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी के बाद इन्हीं का नम्बर था। इनके जीवन-काल में फिर अहमद, उसमान, मुबारक, रसखानि आदि अच्छे हिंदी के कवि उत्पन्न हो गये। इन्हीं बातों से पता चलता है कि रहीम का समय ब्रजभाषा की कविता के लिए विशेष उत्थान का था।

इनके पूर्ववर्ती अनेक कवियों ने अधिकतर दोहे-चौपाइयों

अथवा पदों में अपनी रचना की है। कवित्त और सवैया छन्दों का प्रयोग तुलसीदासजी के अतिरिक्त दो-एक साधारण कवियों को छोड़कर किसी ने भी नहीं किया। शायद इसी कारण रहीम ने भी अपनी रचना अधिकांश दोहों में समाप्त की हो। दोहों के बाद बरवा छन्दों का भी इन्होंने अधिक प्रयोग किया। इनके पहले तुलसीदासजी ने बरवा छन्दों में बरवै रामायण बनाया था। अन्य कवियों ने बरवा छन्द का व्यवहार बहुत कम किया है। कवित्त-सवैया छन्दों में भी रहीम ने कुछ स्फुट रचना की है। हिन्दी के सिवाय इन्होंने संस्कृत में भी रचना की है।

इनकी कविता में भाषा की सरलता तथा भाव की पूरी तौर पर स्पष्टता पाई जाती है। प्रसाद-गुण भी अच्छा मिलता है। स्वाभाविकता का तो पूर्ण विकास पाया जाता है। कोई-कोई छन्द तो इतने उत्तम और ललित बन पड़े हैं कि अच्छे-से-अच्छे कवियों के छन्दों से टक्कर लेते हैं। इसका कुछ नमूना नीचे दिया जाता है—

जब श्रीकृष्णजी ने कूबरी के चक्कर में पड़कर ब्रज का परित्याग कर दिया और गोपियों की शिकायत सुनकर विरह-विधुरा राधिका को सान्त्वना देने के लिए उद्धव को वहाँ भेजा तो उस तपस्विनी राधा ने इस शुभ संवाद को सुनने के लिए उद्धवजी के दर्शन भी न किये। परन्तु उनके चलते समय गोपियों ने उनसे नम्र होकर यह निवेदन किया कि—

कहु रहीम उत जायकै, गिरिधारी सों टेरि।
राधे-दृग-जल-झरन ते, अब ब्रज बूड़त फेरि॥

इन्द्र के प्रकोप से व्रज की रक्षा करने के लिए उस गोवर्धन धारण करनेवाले गिरिधारी से यह निश्चय दिलाते हुए कहना कि व्रज पर अब वही विपत्ति शीघ्र ही फिर आनेवाली है। तुम्हारे वियोग में राधिका की अविरल अश्रु-वर्षा से व्रज डूबना ही चाहता है। जैसे उस बार व्रज को बचाकर सबकी रक्षा की थी, इस बार भी दर्शन देकर राधिका के अश्रु-मोचन को बन्द करें और व्रज की रक्षा करें। अन्यथा इस बार व्रज अवश्य डूब जायगा और फिर आने पर कुछ हो न सकेगा—रोग असाध्य हो जायगा।

हाथी के ऊपर रहीम की एक बड़ी मनोहर उक्ति है। हाथी जब चलता-फिरता है तो वह अपनी सूँड़ को पृथ्वी से इधर-उधर स्पर्श करता हुआ चलता है। उस समय ऐसा मालूम पड़ता है कि किसी वस्तु को ढूँढ़-सा रहा है। कभी धूल को सूँड़ में भरकर अपने मस्तक और पीठ पर डालता है। इसी पर रहीम ने कहा है कि—

धूरि धरत निज सीस पर, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनिपत्नी तरी, सो ढूँढ़त गजराज॥

रहीम कहते हैं कि हाथी इसी अभिप्राय से पृथ्वी की धूल टटोलता फिरता है तथा उसे अपने सिर पर डालता है कि जिस चरण-रज को पाकर मुनिपत्नी अहल्या का उद्धार हुआ था, शायद वही रज-कण कहीं धूल में मिल जायँ और उनको शीश पर रखने से उसका भी उद्धार हो जाय। रहीम की यह एक अनोखी सूझ है। शब्दों की सरलता और सहज उक्ति सराहनीय है।

कोई मीठी वस्तु खाने के बाद नमकीन चीज के लिए चित्त चटपटाने लगता है तथैव नमकीन के बाद मीठी चीज खाने को तबियत चाहने लगती है। इसी को रहीम ने बड़ी स्वाभाविकतया नेत्रों के सलोनेपन तथा अधरों की मिठास पर उत्तमता से घटित किया है। नेत्रों में स्वाभाविक सलोनापन होता है। 'सलोने' शब्द के अन्दर सुन्दरता के प्रायः सभी विशेषण आ जाते हैं। सलोनापन अथवा नमकीनपन भी उसमें एक है। रहीम ने इसी भाव को यहाँ पर मुख्य माना है। आँखों में नमकीनापन होता भी है। प्रस्वेद में क्षार पदार्थ मिला होता है इससे शरीर में उसका अस्तित्व सिद्ध होता है। आँखें शरीर का एक अंग ही हैं। अस्तु, उनमें भी नमकीनापन होना स्वाभाविक है। दूसरे, अश्रु में भी क्षार पदार्थ मिला होता है इससे भी नेत्रों में सलोनापन होना सिद्ध होता है। अधरों में मिठास होना प्रेमियों की अनोखी सूझ है। अधरामृत बार-बार पीकर भी तृप्ति नहीं होती। इसी पर रहीम कहते हैं—

नयन सलोने अधर मधु, घटि रहीम कहु कौन।
मीठो भावै लौन पर, अरु मीठे पर लौन॥

नेत्रों में जितना सलोनापन होता है, अधरों में उतनी ही मिठास होती है तो फिर किसको घट-बढ़कर कहा जाय। रहीम ने प्रेमी-युगुल को सम्मुख रखकर चित्रवत् प्रत्यक्ष कर दिया है। प्रेमी-प्रेमिका के सरस अवलोकन से वशीभूत होकर अंग-अंग ढीला पड़ जाता है। इस अवस्था के उपरान्त उसे अधरामृतपान करना ही सहज होता है। निर्निमेष नेत्रों से अवलोकन और अधर-रस का पान दोनों उसके प्रिय पदार्थ हैं। रहीम ने एक

सजीव चित्र खींचकर इनका कैसा अच्छा वर्णन किया है।

नायिका के उरोजों का उरोज देखकर नायक के हृदय में स्वाभाविक ही बड़ी प्रसन्नता होती है। इसी का वर्णन रहीम ने इस दोहे में किया है। रहीम कहते हैं कि—

> मनसिज माली की उपज, कही रहीम न जाय।
> फल स्यामा के उर लगे, फूल स्याम उर माय॥

यौवन के उद्यान में कामदेव-रूपी माली काम करता है। वह इस वाटिका के सजाने तथा सरस बनाने में बड़ा प्रवीण है। इस वाटिका में वह तरह-तरह के मनोहर तथा उत्तम पदार्थ पैदा करता है। इसकी वाटिका में एक और भी अनोखी बात होती है। फल किसी वृक्ष में लगते हैं और फूल किसी वृक्ष में। इसी हिसाब से फल तो श्यामा के हृदय में लगते हैं, परन्तु उनके उत्पन्न होने का हर्ष श्याम के हृदय में होता है।

नायिका अपने प्रीतम के प्रति स्नेह को अपनी अंतरंग सखी से प्रकट करती है। वह कहती है कि वैकुंठ को लेकर मुझे क्या करना है; कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर भी मेरा क्या हित हो सकता है, मुझे तो केवल उनका प्रेम और संयोग चाहिए, जिसको पाकर ढाख की छाँह भी मुझे अधिक प्यारी और हितकर होगी। प्रीतम का वियोग होने से स्वर्ग-सुख पाकर भी सभी सुख-सम्पत्ति विषवत् प्रतीत होगी।

> काह करब बैकुंठ लै, कल्पबृक्ष की छाँह।
> रहिमन ढाख सुहावनी, जो गल पीतम-बाँह॥

रहीम की यह कैसी सरल और सरस उक्ति है। नायिका

के प्रगाढ़ प्रेम को जिस खूबी से दिखाया है, सराहनीय है। नगर-शोभा-वर्णन में रहीम एक कायस्थ-नायिका का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वह ऐसी शृंगार-प्रिय तथा चपल प्रेमिका है कि संकेत से ही अपना सारा काम निकाल लेती है। नायिका इतनी चतुर है कि वह बरुनियों के बालों की तो लेखनी बनाती है, नेत्रों में लगे हुए कज्जल से स्याही का काम लेती है और इनसे अपनी प्रेम-कथा लिखकर नायक को पढ़ाती है। सुचतुर नायक इसे पढ़कर अपार प्रेमानन्द पाता है।

बरुनि-बार लेखनि करे, मसि काजर भरि लेइ।
प्रेमाखर लिखि नैन ते, प्रिय बाँचन को देइ॥

रहीम ने एक भविष्यगुप्ता नायिका का बड़ा अच्छा वर्णन किया है। वह नायक के प्रेम-फन्द में सोलहो आने फँस चुकी है और अपने इष्ट-साधन का निश्चय कर चुकी है। वह यह भी जानती है कि ऐसा हो जाने पर संभवतः लोग उसे कलंकित अवश्य करेंगे। इसी की वह पेशबन्दी करती है। अपनी सखी से कहती है कि चौथ का चन्द्रमा देखने से लोग कहते हैं कि देखनेवाले को कलंक लगता है। मैं भी इस बार चौथ के चन्द्र को अवश्य देखूँगी। देखूँ, उनके साथ मुझे कैसे कलंक लगता है।

हौं लखिहौं री सजनी, चौथि मयंक।
देखौं केहि बिधि हरि से, लगै कलंक॥

छोटे-छोटे शब्दों में नायिका के अभिप्राय को रहीम ने किस उत्कृष्टता से वर्णित किया है, विचारकर मन मुग्ध हो जाता है। शब्दों में जैसी सरलता है भाव में वैसी ही चतुरता।

———

सदृश-भाव

जहाँ इनकी कविता में इतनी अच्छाई मिलती है वहाँ कहीं-कहीं भाषा की बहुत शिथिलता भी पाई जाती है। इस शिथिलता का कारण अधिकांश पाठ की अशुद्धता ही हमें प्रतीत होती है जिसके विषय में, पुस्तकों का विवरण देते हुए, हम अपने विचार प्रकट कर चुके हैं। यहाँ पर उसके दुहराने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। दूसरे, कहीं-कहीं भाव-भंगता भी पाई जाती है—इसका कारण भी उपर्युक्त ही हो सकता है। अथवा न भी होने पर जब तक पाठ के विषय निर्णय न हो जायँ, इस विषय में कुछ कहना हमारी समझ में उचित नहीं है। तीसरी बात दूसरे के भावों का समावेश है। इस दोष से रहीम भी वंचित न रह सके। रहते भी कैसे, बात असंभव थी। कारण, हिन्दी-कवियों में थोड़ा-बहुत इस दोष के सभी भागी हैं। फिर भी यह बात हो सकती है कि कोई-कोई समर्थ कवि ऐसा करके भी अच्छे रूप में उसका निर्वाह कर गये हैं और इस प्रकार अपने ऊपर आये हुए लांछन पर एक अच्छा परदा-सा डाल गये हैं। परन्तु रहीम ऐसा नहीं कर सके। इनके दोहों में पूर्ववर्ती कवियों में तुलसीदासजी के भाव अधिक आये हैं। रहीम के चार दोहों में तुलसीदासजी के दोहों के भाव आये हैं। दोहा नं० १३, ५६, ७५ और १०९ के फुटनोट के साथ तुलसीदासजी के दोहे दिखा दिये गये हैं। इनमें कोई बात विशेष उल्लेखनीय

नहीं है। रहीम ने कहीं-कहीं बहुत थोड़ा परिवर्त्तन करके ही उसको अपने दोहों में स्थान दिया है। रहीम ने तुलसीदासजी के एक दोहे का भाव अपने एक बरवै में लेकर अच्छा कर पाया है।

जन्म सिंधु पुनि बन्धु बिष, दिन मलीन सकलंक।
प्रिय-मुख समता पाव किमि, चन्द्र बापुरो रंक॥

—तुलसी

छं न मलिन बिष भैया, औगुन तीन।
मोहिं कह चन्द बदनिया, पिय मतिहीन।

— रहीम

तुलसीदासजी ने स्वेष्टदेव श्रीरामचन्द्रजी-द्वारा एकान्त में सीताजी के रूप की कल्पना कराई है। सीताजी की मुख-सुन्दरता की समता के लिए चन्द्रमा को सामने रखकर विचार किया है। लेकिन उसमें कई अवगुण निकल आने से उसे 'बापुरो रंक' कहकर समता से हीन कर दिया। परन्तु रहीम ने एक रूप-गर्विता के मुख से यही सब बातें कहलाई हैं। प्रसंग यह था कि कहीं उसके प्रेमी ने भूल से अथवा अज्ञानवश उसकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर प्रेमालाप में उसे चन्द्रबदनी कह दिया था। बस, इसी पर वह इतनी बिगड़ी कि अपनी सखी से चन्द्रमा के अवगुण कहकर अपने प्रिय की मति-हीनता प्रकट करती है। वह अपने रूप के सम्मुख चन्द्रमा को समता के लिए लाना भी अपना महा अपमान समझती है। उसके कथन में जितना गर्व, भाव की प्रौढ़ता तथा जोर है, उतना तुलसीदासजी के दोहे में नहीं है। दूसरी बात यह भी है कि रहीम सुन्दर शब्द-योजना के साथ, तुलसीदासजी से थोड़े ही शब्दों में, अपना पूरा भाव व्यक्त

करने में समर्थ हुए हैं। हमारी राय में तुलसीदासजी के दोहे से रहीम के बरवै में अधिक लालित्य है।

रहीम-कृत बरवै नाम की जो पुस्तक है और जिसका परिचय हम पहिले दे चुके हैं, उसके मंगलाचरण जितने के बरवै छन्द हैं, वे प्रायः सभी तुलसीदासजी के मंगलाचरण के सोरठों को, जो बालकांड के आदि में दिये हुए हैं, सम्मुख रखकर बनाये गये हैं। तुलसीदासजी ने मंगलाचरण में संस्कृत के श्लोक लिखने के उपरान्त पाँच सोरठों में गणेश, विष्णु, शिव और गुरु की वंदना की तथा आगे चलकर एक सोरठे में हनुमान्‌जी की स्तुति की है। रहीम ने भी प्रथम ६ बरवों में गणेश, श्रीकृष्ण, सूर्य, शिव, हनुमान्‌जी और गुरु की वंदना की है। यद्यपि रहीम ने गणेश, हनुमान् और गुरु की वंदना लिखते हुए यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन कर दिया है तथापि उनमें तुलसीदासजी के भावों की झलक साफ दिखाई देती है। पाठकों की सुविधा के लिए हम उन्हें नीचे उद्धृत कर रहे हैं—

जेहि सुमिरत सिधि होय, गननायक करिवर-बदन।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धि-रासि सुभ-गुन-सदन॥

—तुलसी

बन्दहुँ बिघन-बिनासन, रिधि-सिधि-ईस।
निर्मल बुद्धि-प्रकासन, सिसु ससि सीस॥

—रहीम

बन्दहुँ पवन-कुमार, खल-बन-पावक ज्ञान-घन।
जासु हृदय आगार, बसहिं राम सर-चाप-धर॥

—तुलसी

ध्यावहुँ बिपति-बिदारन, सुवन-समीर ।
खल-दानव - बन-जारन, प्रिय रघुबीर ॥

—रहीम

बन्दौं गुरुपद-कज, कृपा-सिंधु नररूप हरि ।
महामोह-तम-पुंज, जासु बचन रबि-कर-निकर ।

—तुलसी

पुनि पुनि बन्दहुँ गुरु के, पद जलजात ।
जेहि प्रसाद ते मन के, तिमिर नसात ॥

—रहीम

रहीम ने सूरदासजी के एक पद से कुछ भाव लेकर एक दोहा बनाया है ।

असमय मीत काको कौन ?
बधिक मार्‌यो बान से मृग, कियो कानन गौन ।
तन को सानित भयो बैरी, खोजि दीन्हों तौन ॥

—सूर

रहिमन असमय के परे, हित अनहित ह्वै जाइ ।
बधिक-बान सों मृग बँध्यो, देतो रुधिर बताइ ॥

—रहीम

भाव दोनों का स्पष्ट है । रहीम के दोहों में कोई विशेषता नहीं है ।

ऐसे ही कबीरदासजी के एक दोहे के भाव से रहीम ने दोहा नम्बर २११ बनाया है । कबीर ने जिस बात को स्पष्ट कर दिया है, उसी को रहीम ने गुप्त रखकर अपना अभिप्राय प्रकट किया है । फिर भी रहीम के दोहे में कबीरजी की शब्द-योजना से कोई अधिक रोचकता अथवा लालित्य नहीं आ सका ।

रहीम ने कई दोहे संस्कृत-छन्दों के भाव लेकर अथवा उनका अनुवाद करके ही बनाये हैं।

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नोदकं, तथा न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
धाराधरो वर्षति नात्महेतवे, परोपकाराय सतां विभूतयः॥

रहीम ने इसी को एक दोहे में किया है।

तरुवर फल नहिं खात है, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम पर-काज हित, सम्पति सँचहिं सुजान॥

यद्यपि धाराधर का उदाहरण दोहे में नहीं आ सका तथापि रहीम ने पर-काज-हित की बात काफी सबूत से पेश की है। इसी प्रकार दोहा नं० ११९, १५६ और १५९ अन्य श्लोकों के भाव लेकर, जो फुटनोट में दे दिये गये हैं, बनाये हैं। इन छन्दों में प्रायः सभी भर्तृहरि के बनाये हुए हैं। ये सभी कवि रहीम के पूर्ववर्ती हैं।

अब उन कवियों का हाल सुनिए, जिन्होंने रहीम के भाव अपने छन्दों में अपनाये हैं। ये रहीम के परवर्ती कवि हैं।

मतिराम के तीन दोहों में रहीम के एक सोरठे और दो बरवों के भाव पाये जाते हैं। रहीम के भावों को लेकर इन्होंने अच्छा दिखा पाया है। यह बात अवश्य है कि रहीम से मतिराम को कविता करना अधिक स्वाभाविक था। यही कारण है कि मतिराम ने और नमक-मिर्च लगाकर उन्हें रहीम से अच्छा गढ़कर दिखा दिया है। फिर भी श्रेय रहीम को है, मतिराम को नहीं, क्योंकि रहीम को उन भावों के उद्भाव के लिए जहाँ स्वयं दिमाग लड़ाना पड़ा था, वहाँ मतिराम को केवल भाषा में ही प्रयत्न करना पड़ा। दूसरे, यह बात भी है कि

यदि नकल करनेवाले में योग्यता है तो वह असल से अच्छा तैयार कर दिखा सकता है।

इसी सिलसिले में उन दोनों कवियों की रचना को मिलाने के लिए हम उन्हें नीचे देते हैं—

गई आगि उर लाय, आगि लैन आई जु तिय।
लागी नाहिं बुझाय, भभकि-भभकि बरि-बरि उठै ।।

—रहीम

नैन जोरि मुख मोरि हँसि, नैसुक नेह जनाय।
आगि लेन आई जु तिय, मेरे गई लगाय ।।

—मतिराम

सेज बिछाय पलँगिया, अँग सिंगार।
चितवति चौंक तरुनिआ, दै दिग द्वार ।।

—रहीम

सुन्दरि सेज सँवारि कै, सब साजे सिंगार।
दग कमलन के द्वार पर, बाँधे वन्दनवार ।।

—मतिराम

करत नहीं अपरधवा, सपनेहु पीउ।
मान करन की बिरियाँ, रहिगो हीउ ।।

—रहीम

सपनेहू मनभावतो, करत नहीं अपराध।
मेरे मन में ही रही, मान करन की साध ।।

—मतिराम

मतिराम उपर्युक्त दोहों को रहीम से उत्तम बना सके हैं। रहीम का दोहा नं० ३५ और सोरठा नं० ७ अहमद के नाम से भी पाये जाते हैं। केवल नाम का परिवर्तन है। रहीम की मृत्यु के समय अहमद केवल १२ वर्ष के थे और उनकी कविता

भी तब प्रारम्भ नहीं हुई थी। अतः ये छन्द रहीम के ही हैं। रचना का खयाल करके भी यह बात सिद्ध की जा सकती है। अब अहमद की रचना में इनको कैसे स्थान दिया गया, यह कहा नहीं जा सकता। यह अपराध या तो स्वयं अहमद ने किया है या किसी उनके भक्त ने रहीम का नाम निकालकर उनके नाम से इन्हें लिख दिया है।

वृन्द के दो दोहों में भी रहीम के दोहों के भाव मिलते हैं। ये भी रहीम के परवर्ती कवि हैं।

> ससि की सीतल चाँदनी, सुन्दर सबहिं सुहाय।
> लगै चोर चित मैं लटी, घटि रहीम मन आय॥
>
> —रहीम

> जासों जाको हित सधै, सोई ताहि सुहात।
> चोर न प्यारी चाँदनी, जैसी कारी रात॥
>
> —वृन्द

चन्द्रमा की शीतलता सबको सुखप्रद और भली मालूम होती है; वह भी चोर के मन में छल होने के कारण, उसे बुरी लगती है। यही रहीम के दोहे का भाव है। वृन्द ने अपने दोहे में कुछ परिवर्तन कर दिया है। परिवर्तन क्या उन्होंने अधिक स्पष्टता कर दी है। वृन्द ने शीतल चाँदनी के स्थान पर उसी का समभाव हित-साधना ले लिया है। दूसरे चरण का अर्धांश तो एक ही है। बाकी अंश में वृन्द ने एक विशेषता कर दी है। उन्होंने चोर की हित-साधक कारी रात की प्रियता दिखा दी है। इस प्रकार वृन्द का दोहा रहीम से कुछ अच्छा ही बन पाया है, खराब नहीं।

सौदा करो सो करि चलो, रहिमन याही हाट।
फिरि सौदा पैहो नहीं, दूरि जान है बाट॥

—रहीम

या दुनिया में आइकै, छोड़ि देइ तू ऐंठ।
लेना है सो लेइ ले, उठी जात है पैंठ॥

—वृन्द

उपर्युक्त दोहे में भी वृन्द ने रहीम के भाव को अधिक स्वाभाविक रीति से दिखाया है।

इसे समाप्त करने के पूर्व मैं अपने ज्येष्ठ बन्धु श्रीयुत पं० राघवेन्द्र शर्मा त्रिपाठी (ब्रजेश) तथा योगेन्द्र शर्मा त्रिपाठी और ब्रजभाषा-काव्य-मर्मज्ञ श्रीयुत पं० कृष्णबिहारीजी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०, पं० भगीरथप्रसादजी दीक्षित तथा पं० भवानीशंकरजी याज्ञिक को कृतज्ञता प्रकट किये विना नहीं रह सकता, क्योंकि समय-समय पर आप महानुभावों से मुझे इस कार्य में बड़ी सहायता मिली है।

गोनी, पो० अतरौली,
जिला हरदोई।
१-५-२६

विनयावनत,
सुरेन्द्रनाथ तिवारी

विषय-सूची

—:०:—

८—अभिसारिका

९—प्रवत्स्यत्प्रेयसी

१०—आगतपतिका

पुनः त्रिविध नायिका-भेद

रहीम-कवितावली

दोहे

अमरबेलि बिन मूल की, प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि, खोजत फिरिए काहि ॥ १ ॥
अधम बचन तैं को फल्यो, बैठि तार की छाँहि।
रहिमन काम न आवहीं, जे नीरस जग माँहि ॥ २ ॥
अनुचित-उचित रहीम लघु, करहिं बड़ेन के जोर।
ज्यों ससि के संजोग[1] तैं, पचवत[2] आगि चकोर ॥ ३ ॥
अनुचित बचन न मानिए, जदपि गुराइस[1] गाढ़ि।
है रहीम रघुनाथ तैं, सुजस भरत को बाढ़ि ॥ ४ ॥
अब रहीम मुसकिल परी, गाढ़े दोऊ काम।
साँचे तैं तो जग नहीं, झूठे मिलैं न राम ॥ ५ ॥
अँमी[1] पियावत मान बिन, रहिमन मोहिं न सुहाइ।
प्रेम सहित मरिबो भलो, जो बिष देइ बुलाइ ॥ ६ ॥*
अमृत ऐसे बचन में, रहिमन रिस की गाँस[1]।
जैसे मिसिरिहु में मिली, निरस बाँस की फाँस ॥ ७ ॥
अरज-गरज मानैं नहीं, रहिमन ये जन चारि।
रिनियाँ राजा माँगतो[1], काम-आतुरी नारि ॥ ८ ॥

३—१-मेल, २-सह लेता है।
४—१-मीठापन-प्रत्यक्ष हित।
६—१-अमृत।
* कहीं-कहीं यही दोहा सोरठे के रूप में पाया जाता है।
७—१-तीक्ष्णता, गाँसी—एक प्रकार का तीर भी होता है।
८—१-भिक्षुक।

असमय परे रहीम कहि, माँगि जात तजि लाज।
ज्यों लछिमन माँगन गये, पारासर के नाज॥ ९॥
आये राम रहीम सब, किये मुनिन को भेस।
जब जापै बिपदा परै, सो जावै परदेस॥ १०॥*
आवत काम रहीम है, गाढ़े[1] बन्धु सनेह।
जीरन[2] पेड़हिं के भये, राखत बरहिं[3] बरोह[4]॥ ११॥
आप न काहू काम के, डार पात फल मूर।
औरन को रोकत फिरैं, रहिमन कूर बबूर॥ १२॥
उरग[1] तुरँग नारी नृपति, नीच जाति हथियार।
रहिमन इन्हैं सँभारिए, पलटत[2] लगै न बार॥ १३॥+
ऊगत[1] जाही भाँति सों, अथवत[2] ताही काँति।
त्यों रहीम सुख-दुख सबै, बढ़त एक ही भाँति॥ १४॥×

---

* १०—इसी आशय का रहीम का एक और भी दोहा मिलता है:—
चित्रकूट में बसि रहे, रहिमन अवध-नरेस।
जेहि पर बिपदा परत है, सो आवत यहि देस॥
देखो दोहा नं० ५८

११—१-विपत्ति में, २-जीर्ण, ३-वट-वृक्ष, ४-लताएँ।

१३—१-साँप, २ प्रतिकूल होते हुए।

+ तुलसीदास का भी एक ऐसा ही दोहा है:—
उरग तुरँग नारी नृपति, नर नीचो हथियार।
तुलसी परखत रहब नित, इनहिं न पलटत बार॥

१४—१-उदय होते हैं, २-अस्त होते हैं।

× इसी आशय का इनका एक दोहा और भी है:—
यों रहीम सुख-दुख सहत, बड़े लोग सहि साँति।
उवत चन्द जेहि भाँति सों, अथवत वाही भाँति॥
देखो दोहा नं० १५२

ओछे काम बड़े करैं, तौ न बड़ाई होइ।
ज्यों रहीम हनुमन्त को, गिरिधर कहै न कोइ॥ १५॥
अंडन बौड़ रहीम कहि, देखि सचिक्कन पान।
हस्ती धक्का कुल्हड़िन, सहैं ते तरुवर आन॥ १६॥
अंजन दीन्हे किरकिरी, सुरमा दियो न जाय।
जिन आँखिनसों हरि लख्यो, रहिमन बलि-बलि जाय॥ १७॥
कदली सीप भुजंग मुख, स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन॥ १८॥*
कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय॥ १९॥
कमला थिर न रहीम कहि, लखत अधम जे कोय।
प्रभु की सो अपनी कहै, क्यों न फजीहत होय॥ २०॥
करत निपुनई गुन बिना, रहिमन गुनी हजूर।
मानों टेरत विटप चढ़ि, यहि समान हम कूर॥ २१॥
करम-हीन रहिमन लखौ, धँसो बड़े घर चोर।
चिन्तत ही बड़ लाभ कों, जागत ह्वैगो भोर॥ २२॥
कहि रहीम इक दीपतैं, प्रकट सबै द्युति होइ।
तनु-सनेह कैसे दुरै, दृग-दीपक जरु दोइ॥ २३॥

१६—१-रण का वृक्ष।

* १८—इनका ऐसा ही एक दूसरा दोहा भी है—

मुकता करै कपूर करि, चातक जीवन जोय।
एतो बड़ो रहीम जल, ब्याल बदन बिष होय॥

देखो दोहा नं० १४१

२०—१-बदनामी।

कहि रहीम धन बढ़ि घटै, जात धनिन की बात।
घटै-बढ़ै उनको कहा, घास बेंचि जे खात॥ २४॥
कहि रहीम या जगत में, प्रीति गई है टेरि।
रही रहीम नर नीच में, स्वारथ-स्वारथ हेरि॥ २५॥
कहि रहीम सम्पति सगे, बनत बहुत बहु रीति।
बिपति-कसौटी[1] जे कसे, तेई साँचे मीत॥ २६॥
कहु रहीम कैसे बनै, बेर[1]-केर[2] को संग।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग॥ २७॥
कहु रहीम केतिक रही, केती गई बिहाइ।
माया ममता मोह परि, अन्त चले पछिताइ॥ २८॥
कहु रहीम उत जायकै, गिरिधारी सों टेरि।
राधे-दृग-जल-झरन ते, अब ब्रज बूड़त फेरि॥ २९॥
कहु रहीम कैसे बनै, अनहोनी ह्वै जाइ।
मिला रहै औ ना मिलै, तासों कहा बसाइ॥ ३०॥
कागद को-सो पूतरा, सहजहिं में घुलि जाय।
रहिमन यह अचरज लखौ, सोऊ खैंचत बाय॥ ३१॥*
काज परे कछु और है, काज सरे[1] कछु और।
रहिमन भाँवँर[2] के भए, नदी सिरावत मौर॥ ३२॥

२६—१-एक प्रकार का पत्थर जिस पर सोने की परीक्षा की जाती है।

२७—१-बेर का वृक्ष, २-केले का वृक्ष।

* ३१-कहीं-कहीं यही दोहा ऐसे भी पाया जाता है:—

तैं रहीम अब कौन है, एती खैंचत बाय।
जस कागद को पूतरा, नमी माहिं घुलि जाय॥

३२—१-निकल जाने पर-काम हो जाने पर।

२-भावरैं पड़ जाने पर-ब्याह हो जाने पर।

काम कछू आवै नहीं, मोल रहीम न लेइ।
बाजू टूटे बाज को, साहब चारा देइ॥ ३३॥
काह कामरी पामरी, जाड़ गये ते काज।
रहिमन भूख बुझाइए, कैसो मिलै अनाज॥ ३४॥
काह करब बैकुंठ लै, कलपबृच्छ की छाँह।
रहिमन ढाक[1] सुहावनी, जो गल पीतम-बाँह॥ ३५॥*
कुटिलन संग रहीम कहि, साधू बचते नाहिं।
ज्यों नैना सैना करहिं, उरज उमेठे जाहिं॥ ३६॥
कोउ रहीम जनि काहु के, द्वार गये पछिताय।
सम्पति के सब जात हैं, बिपति सबै लै जाय॥ ३७॥
कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भो धीम।
काकी महिमा नहिं घटी, परघर गये रहीम॥ ३८॥
खर्चु बढ़ो रोजी घटी, नृपति निठुर मन कीन।
रहिमन वे नर का करैं, ज्यों थोरे जल मीन॥ ३९॥
खीरा सिर तें काटिए, मलिए लोन लगाइ।
रहिमन करुए मुखन को, चहियत यही सजाइ॥ ४०॥
खैर खून खाँसी खुसी, बैर प्रीति मद पान।
रहिमन दाबे ना दबैं, जानत सकल जहान॥ ४१॥
खैंचि चढ़नि ढीली ढरनि, कहहु कौन यह प्रीति।
आजु कालिह मोहन गही, बंस-दिया[1] की रीति॥ ४२॥

३५—१–पलास का वृक्ष जिसमें टेसू फूलते हैं।

* अहमद के दोहों में भी यह दोहा पाया जाता है। केवल 'रहिमन' की जगह 'अहमद' नाम है।

४२—१–आकाश-दीप जिसे कार्त्तिक मास में बाँसों के सहारे से लोग अपने मकानों पर जलाते हैं।

गगन चढ़ै फिर क्यों तिरै, रहिमन बहरी[1] बाज।
फेरि आइ बंधन परै, पेट अधम के काज॥ ४३॥
गरज आपनी आप सों, कही रहीम न जाइ।
जैसे कुल की कुल-बधू, पर-घर जात लजाइ॥ ४४॥
गहि सरनागत राम की, भवसागर की नाव।
रहिमन जगत-उधार[1] कर, और न कछू उपाव॥ ४५॥
गुन[1] ते लेत रहीम जन, सलिल कूप ते काढ़ि।
कूपहुँ ते कहुँ होत हैं, मन काहू के बाढ़ि॥ ४६॥
गुरुता फबै रहीम कहि, फबि आई है जाहि।
उर पर कुच नीके लगैं, अनत बतौरी[1] आहि॥ ४७॥
चढ़िबो मैन-तुरंग पर, चलिबो पावक माहिं।
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन, सब कोउ निबहत नाहिं॥ ४८॥
चरन छुए मस्तक छुए, तऊ न छाँड़त पानि।
हियौ छुवत प्रभु छोड़ि दै, कहु रहीम का जानि॥ ४९॥
चारा प्यारा जगत में, छाला[1] हित कर लेइ।
ज्यों रहीम आटा लगै, त्यों मृदंग सुरु देय॥ ५०॥
छमा बड़ेन को चाहिए, छोटेन को उतपात।
का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात॥ ५१॥

४३—१-बाज की तरह का ही एक अन्य शिकारी पक्षी।

४५—१-उद्धार।

४६—१-रस्सी तथा गुण।

४७—१-रक्त-कफ-विकार से पैदा हुआ मांस का भाग।

५०—१-चर्म-खाल।

छोटेन सों सोहैं बड़े, कहि रहीम यहि लेख।
सहसन[1] को हय बाँधियत, लै दमरी की मेख॥ ५२॥
जब लगि बित्त न आपने, तब लगि मित्त न कोइ।
रहिमन अम्बुज[1] अम्बुबिन[2], रबि ताकर रिपु होइ॥ ५३॥
जलहिं मिलाइ रहीम ज्यों, कियो आपु सम छीर।
अँगवै आपुहिं आप त्यों, सकल आँच की भीर॥ ५४॥
जहाँ गाँठि तहँ रस नहीं, यह जानत सब कोइ।
मड़ए-तर की गाँठि मैं, गाँठि-गाँठि रस होइ॥ ५५॥
जानि अनीतिहिं जो करै, जागत ही रह सोइ।
ताहि जगाइ बुझाइबो, रहिमन उचित न होइ॥ ५६॥*
जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर को, तऊ न छाँडत छोह॥ ५७॥
चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध-नरेस।
जेहि पर बिपदा परत है, सो आवत यहि देस॥ ५८॥+
जे अनुचितकारी तिन्है, लगै अंक[1] परिनाम।
लखे उरज उर बेधिए, क्यों न होइ मुख स्याम॥ ५९॥
जे गरीब पर हित करैं, ते रहीम बड़ लोग।
कहा सुदामा बापुरो[1], कृष्ण मिताई-जोग॥ ६०॥

५२—१-हजारों।

५३—१ जलज, २-जल।

* ५६—तुलसीदासजी का भी एक ऐसा ही दोहा है:—

समुझि सुरीति कुरीति रत, जागत ही रह सोइ।
उपदेसिबो जगाइबो, तुलसी उचित न होइ॥

+ ५८—देखो दोहा नं० १०।

५९—१-निशान-अपवाद।

६०—१-दीन-बेचारा।

जेहिं रहीम तन-मन दियो, कियो हिए बिच भौन।
तासों दुख-सुख कहन की, रही बात अब कौन ॥ ६१ ॥
जेहि रहीम चित आपनो, कीन्हो चतुर चकोर।
निसि-बासर लागो रहै, कृष्ण-चन्द्र की ओर ॥ ६२ ॥
जेहिं अंचल दीपक दुरो[1], हन्यो सो ताही गात।
रहिमन असमय के परे, मित्र सत्रु ह्वै जात ॥ ६३ ॥*
जैसी तुम हमको करी, करी करी जो तीर।
बाढ़े दिन के मीत हौ, गाढ़े दिन रघुबीर ॥ ६४ ॥
जैसी परै सो सहि रहै, कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत सब, सीत घाम अरु मेह ॥ ६५ ॥
जो रहीम ओछो बढ़ै, तौ तितही इतराइ।
प्यादे से फरजी[1] भयो, टेढ़ो-टेढ़ो जाइ ॥ ६६ ॥
जो विषया सन्तन तजी, मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत बमन करि, स्वान स्वाद सों खात ॥ ६७ ॥
जो रहीम दीपक दसा, तिय राखत पट ओट।
समय परे ते होति है, वाही पट की चोट ॥ ६८ ॥+
जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चन्दन बिष ब्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग ॥ ६९ ॥

६३—१-छिपाया गया-रक्षा की गई।

* रहीम का एक दूसरा दोहा भी ऐसा ही है:—

जो रहीम दीपक दसा, नित राखत पट ओट।
समय परे ते होति है, वाही पट की चोट ॥

देखो दोहा नं० ६८

६६—१-शतरंज के मोहरे।

+ ६८—देखो दोहा नं० ६३

जो बड़ेन को लघु कहौ, नहिं रहीम घटि जाहिं।
गिरिधर मुरलीधर कहे, दुख कछु मानत नाहिं ॥ ७० ॥
जो पुरुषारथ ते कहूँ, सम्पति मिलति रहीम।
पेट लागि बैराट घर, तपत रसोई भीम ॥ ७१ ॥
जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत की सोइ।
बारे उजियारो लगै, बढ़े अँधेरो होइ ॥ ७२ ॥*
जो रहीम होती कहूँ, प्रभु-गति अपने हाथ।
तौ को धौं केहि मानतो, आप बड़ाई साथ ॥ ७३ ॥
जो रहीम मन हाथ है, मनसा कहुँ किन जाहि।
जल मैं ज्यों छाया परी, काया भीजति नाहिं ॥ ७४ ॥÷
जो रहीम बिधि बड़ किये, को कहि दूषन काढ़ि।
चन्द्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत तैं बाढ़ि ॥ ७५ ॥
जो रहीम करिबो हुतो, ब्रज को यही हवाल।
तौ कत मातहिं दुख दियो, गिरिवर-धरि गोपाल ॥ ७६ ॥+
जो नृप बासर निसि कहै, तौ कचपची देखाउ।
रहिमन जो रहिबो चहौ, कहौ उसी को दाँउ ॥ ७७ ॥

---

* ७२—एक दूसरा दोहा इसके प्रतिकूल भी है:—

जो रहीम गति दीप की, कुल सपूत की सोइ।
बड़ो उजेरो तेहि रहे, बढ़े अँधेरो होइ ॥

देखो दोहा नं० ८१

÷ ७४—महात्मा तुलसीदासजी का भी एक ऐसा ही दोहा है—

होहिं बड़े लघु समय सह, तौ लघु सकहिं न काढ़ि।
चन्द दूबरो कूबरो, तऊ नखत तैं बाढ़ि ॥

+ ७६—इसका दूसरा चरण ऐसा भी पाया जाता है

तौ काहे कर पर धर्‌यो, गोबर्धन गोपाल।

७७—१-क्षीण तेज की तारक-मंडली।

जो रहीम पग तर परै, रगरि नाक अरु सीस।
निठुरा आगे रोइबो, आँस गारिबो खीस[1] ॥ ७८ ॥
जो रहीम कोटिन मिलै, धिक जीवन जग माहिं
आदर घटो नरेस ढिग, बसे रहे कछु नाहिं ॥ ७९ ॥
जो घरही मैं घुसि रहैं, कदली सुवन सुडील।
तो रहीम तिनते भले, पथ के अपत करील[1] ॥ ८० ॥
जो रहीम गति दीप की, कुल सपूत की सोइ।
बड़ो उजेरो तेहि रहे, बढ़े अँधेरो होइ ॥ ८१ ॥*
ज्यों नाचति कठपूतरी, करम नचावत साथ।
अपनो हाथ रहीम त्यों, नहीं आपने हाथ ॥ ८२ ॥+
टूटे सुजन मनाइए, जो टूटैं सौ बार।
रहिमन फिरि-फिरि पोहिए, टूटे मुकता हार ॥ ८३ ॥
तनु रहीम है कर्म-बस, मन राखो वहि ओर।
जल में उलटी नाव ज्यों, खैंचत गुन के जोर ॥ ८४ ॥
तबहीं लग जीबो भलो, दीबो परै न धीम।
बिन दीबो जीबो जगत, हमहिं न रुचै रहीम ॥ ८५ ॥

७८—१—व्यर्थ।

८०—१—व्रज के करीर-कुंज प्रख्यात हैं। इनमें पत्ते नहीं होते।
'कोटिन हू कलधौत के धाम, करीर के कुंजन ऊपर वारौं।'
रसखानि

*८१—देखो दोहा नं० ७२

+८२—इसी भाव का एक दोहा और भी है:—
निज कर क्रिया रहीम कहि, सुध भावी के हाथ।
पाँसे अपने हाथ में, दाँव न अपने हाथ ॥
देखो दोहा नं० १०४

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम परकाज हित, सम्पति सँचहिं सुजान ॥ ८६ ॥*

तेहि प्रमान चलिबो भलो, जो सब दिन ठहराइ।
उमँड़ि चलै जल पाट तैं, जो रहीम बढ़ि जाइ ॥ ८७ ॥+

दादुर मोर किसान मन, लग्यो रहै घन माहिं।
पै रहीम चातक-रटनि, सरवरि[1] को कोउ नाहिं ॥ ८८ ॥

दिव्य दीनता के रसहिं, का जानै जग अन्धु।
भली विचारी दीनता, दीनबन्धु-से बन्धु ॥ ८९ ॥

दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोइ।
जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबन्धु सम होइ ॥ ९० ॥

दुख नर सुनि हाँसी करैं, धरैं रहीम न धीर।
कही सुनैं सुनि-सुनि करैं, ऐसे वे रघुवीर ॥ ९१ ॥

दुरदिन परे रहीम जग, दुरथल जैयत भागि।
ठाढ़े हूजत घूर[1] पर, जब घर लागति आगि ॥ ९२ ॥

दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब पहिचानि।
सोच नहीं वित-हानि को, जो न होइ हित-हानि ॥ ९३ ॥

दोहा दीरघ अर्थ के, आखर[1] थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट कुण्डली, सिमिटि कूदि कढ़ि जाहिं ॥ ९४ ॥

---

* ८६—यह एक संस्कृत श्लोक का अनुवाद है।

\+ ८७—कहीं-कहीं यह दोहा ऐसे भी पाया जाता है:—

जो मरजाद चली सदा, सोई तौ ठहराइ।
जो जल उमड़ै पाटतैं, सो रहीम बहि जाइ ॥

८८—१-बराबरी।

९२—१-वह स्थान जहाँ देहात में लोग कूड़ा इकट्ठा करते हैं।

९४—१-अक्षर।

देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन-रैन।
लोग भरम हम पै धरैं, याते नीचे नैन॥ ९५ ॥*

धन थोरो इज्जति बड़ी, कहु रहीम का बात।
जैसे कुल की कुल-वधू, चिथरन माँहि समात॥ ९६ ॥

धन दारा अरु सुतन मैं, रहत लगाए चित्त।
क्यों रहीम खोजत नहीं, गाढ़े दिन को मित्त॥ ९७ ॥

धनि रहीम गति मीन की, जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कंज[1] तजि अन्त बसि, कहा भौंर को भाय॥ ९८ ॥

धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पियत अघाइ।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाइ॥ ९९ ॥

धूरि धरत नित सीस पै, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि-पतनी[1] तरी, सो ढूँढ़त गजराज॥ १०० ॥

नहिं रहीम कछु रूप गुन, नहिं मृगया अनुराग।
देसी स्वान जो राखिए, भ्रमत भूख ही लाग॥ १०१ ॥

नात नेह दूरी भलो, लो रहीम जिय जानि।
निकट निरादर होत है, ज्यों गड़ही[1] को पानि॥ १०२ ॥

नाद[1]-रीझि तन देत मृग, नर धन हेत समेत।
ते रहीम पसु ते अधिक, रीझेहु कछू न देत॥ १०३ ॥

---

* ९५—कहा जाता है कि कविवर गंग के निम्न-लिखित दोहे के उत्तर में रहीम ने यह दोहा तत्काल बनाकर उन्हें सुनाया था:—

सीखे कहाँ नवाब जू, ऐसी देनी दैन।
ज्यों-ज्यों कर ऊँचे करो, त्यों-त्यों नीचे नैन॥

९८—१-कमल।
१००—१-अहल्या।
१०२—१-छोटी तलैया।
१०३—१-ध्वनि।

निज कर क्रिया रहीम कहि, सुधि भावी के हाथ।
पाँसे अपने हाथ में, दाँव न अपने हाथ ॥ १०४ ॥*
नैन सलोने अधर मधु, कहु रहीम घटि कौन।
मीठो भावै लौन पर, अरु मीठे पर लौन ॥ १०५ ॥
पन्नग-बेलि[1] पतिव्रता, रति सम सुनहु सुजान।
हिम रहीम बेली दही, सत जोजन दहियान[2] ॥ १०६ ॥
परि रहिबो मरिबो भलो, सहिबो कठिन कलेस।
बामन ह्वै बलि को छल्यो, भलो दियो उपदेस ॥ १०७ ॥
पसरि पत्र झंपहिं पितहिं, सकुचि देत ससि सीत।
कहु रहीम कुल कमल को, को बैरी को मीत ॥ १०८ ॥
पात-पात को सींचिबो, बरी-बरी को लौन।
रहिमन ऐसी बुद्धि ते, काज सरैगो कौन ॥ १०९ ॥+
पाँच रूप पाण्डव भए, रथ-बाहक नलराज।
दुरदिन परे रहीम कहि, बड़ेन किए घटि काज ॥ ११० ॥
पीतम-छबि नैनन बसी, पर-छबि कहाँ समाय।
भरी सरायँ रहीम लखि, आपु पथिक फिरि जाय ॥ १११ ॥
पूरुष पूजैं दौहरा[1], तिय पूजैं रघुनाथ।
कहु रहीम कैसे बनै, भैंस-बैल को साथ ॥ ११२ ॥

---

* १०४—देखो दोहा नं० ८२।

१०६—१-पान की लता, २-दाह किया हुआ।

१०८—१-झाँपते हैं।

\+ १०९—तुलसीदासजी का एक दोहा भी ऐसा ही है:—

पात-पात को सींचिबो, बरी-बरी को लौन।
तुलसी खोटे चतुरपन, कलिदुह के कहु कौन॥

११२—१-देवी-देवता।

बड़ माया को दोष यह, जो कबहूँ घटि जाइ।
तौ रहीम मरिबो भलो, दुख सहि जियै बलाइ ॥ ११३ ॥*
बड़े पेट के भरन को, है रहीम दुख बाढ़ि।
याते हाथी हहरि कै, दियो दाँत द्वै काढ़ि ॥ ११४ ॥
बड़े दीन को दुख सुने, लेत दया उर आनि।
हरि हाथी सों कब हुती, कहु रहीम पहिचानि ॥ ११५ ॥
बड़े बड़ाई ना तजैं, लघु रहीम इतराय।
राय करौंदा होत है, कटहर होत न राय[1] ॥ ११६ ॥
बड़े बड़ाई ना करैं, बड़े न बोलैं बोल।
रहिमन हीरा कब कहैं, लाख टका है मोल ॥ ११७ ॥
बढ़त रहीम धनाढ्य धन, धनै धनी के जाइ।
घटै-बढ़ै वाको कहा, भीख माँगि जो खाइ ॥ ११८ ॥
बरु रहीम कानन बसिय, असन[1] करिय फल तोय।
बंधु-मध्य गति दीन ह्वै, बसिबो उचित न होय ॥ ११९ ॥
बसि कुसंग चाहत कुसल, यह रहीम अपसोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बसा परोस ॥ १२० ॥
बाँकी चितवनि चित गड़ी, सूधी तौ कछु धीम।
गरमी ते बढ़ि होत दुख, काढ़ि न कढ़त रहीम ॥ १२१ ॥

---

* ११३—देखो दोहा नं० २४३।

११६—१-एक उपाधि का नाम है।

११९—१-आहार।

संस्कृत में 'भर्तृहरि' का एक श्लोक भी इसी आशय का है:—

वनं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं द्रुमालयं पक्वफलाम्बुभोजनम्।
तृणेषु शय्या परिधानवल्कलं न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम्॥

बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोइ।
रहिमन बिगरे दूध के, मथे न माखन होइ॥ १२२॥
बिपति भए धन ना रहै, होइ जो लाख करोर।
नभ-तारे छिपि जात हैं, जिमि रहीम भे भोर॥ १२३॥
बिरह-रूप घन तम भयो, अवधि आस उद्यौत।
ज्यों रहीम भादौं-निसा, चमकि जात खद्यौत॥ १२४॥
भजौं तो काको मैं भजौं, तजौं तो काको आन।
भजन-तजन ते बिलग ह्वै, तेहिं रहीम तू जान॥ १२५॥
भली भई घर[1] ते छुट्यो, हँस्यो सीस परि खेत।
काके-काके नवत हम, अपन पेट के हेत॥ १२६॥
भावी ऐसी प्रबल है, लो रहीम यह जानि।
भावी काहू ना दही, दही एक भगवान॥ १२७॥
भावी या उनमान[1] की, पाण्डव बनहि रहीम।
जदपि गौरि सुनि बाँझ है, डरु है संभु अजीम[2]॥ १२८॥
भीति गिरी पाषान की, अररानी वहि ठाम।
अब रहीम धोखो भयो, को लागै केहि काम॥ १२९॥
भूप गनत लघु गुनिन को, गुनी गनत लघु भूप।
रहिमन नभ तैं भूमि लौं, लखौ तो एकै रूप॥ १३०॥
मथत-मथत माखन रहै, दही-मही बिलगाइ।
रहिमन सोई मीत है, भीर परे ठहराइ॥ १३१॥
मन-सों कहाँ रहीम प्रभु, दृग-सों कहाँ देवान।
दृग देखैं जेहि आदरैं, मन तेहि हाथ बिकान॥ १३२॥

१२६—१-शिर से नीचे का भाग।

१२८—१-उन्मान, २-अजेय।

मनसिज[1] माली की उपज, कही रहीम न जाइ।
फूल[2] स्याम के उर लगे, फल[3] स्यामा उर आइ॥ १३३॥
मन्दन के मारेहु गये, औगुन गनि न सिराहिं।
ज्यों रहीम बाधहुँ बँधे, मरहा[1] ह्वै अधिकाहिं॥ १३४॥
महि नभ सर[1] पंजर[2] कियो, रहिमन बल अवसेष।
सो अरजुन वैराट[3] घर, रहे नारि के भेष॥ १३५॥
माँगे घटत रहीम पद, कितो करो बढ़ि काम।
तीनि पैग बसुधा करी, तऊ बावनै नाम॥ १३६॥
माँगे मुकुरि न को गयो, केहि न त्यागियो साथ।
माँगन आगे सुख लह्यो, ते रहीम रघुनाथ॥ १३७॥
मानसरोवर ही मिलै, हंसनि मुकता भोग।
सफरिन[1] भरे रहीम सर, बिपुल बलाकनि[2] जोग॥ १३८॥
मान सहित बिष खायकै, संभु भये जगदीस।
बिन आदर अमृत पियो, राहु कटायो सीस॥ १३९॥
माह मास लहि टेसुवा, मीन परे थल भौंर।
त्यों रहीम जग जानिए, छुटे आपनो ठौर॥ १४०॥
मुकता करै कपूर करि, चातक जीवन जोय।
ये तो बड़ो रहीम जल, ब्याल[1] बदन बिष होय॥१४१॥*
मूढ़-मण्डली मैं सुजन, ठहरत नाहिं बिसेखि।
स्याम कचन मैं स्वेत ज्यों, दूरि कीजियत देखि॥ १४२॥

१३३—१-काम, २-हर्ष, ३-उरज।

१३४—१-दुष्ट प्रकृति की आत्मा।

१३५—१-बाण-तीर, २-ठट्टर, ३-राजा विराट।

१३८—१-छोटी-छोटी मछलियाँ। २-बगुले।

१४१—१-साँप। * देखो दोहा नम्बर १८।

यह रहीम निज संग लै, जनमत जगत न कोइ।
बैर प्रीति अभ्यास जस, होत-होत ही होइ ॥ १४३ ॥

यह न रहीम सराहिए, लेन-देन की प्रीति।
प्रानन बाजी राखिए, हारि होइ कै जीति ॥ १४४ ॥

यह रहीम मानै नहीं, दिलते नवा जो होइ।
चिन्ता जोर कमान के, नए ते औगुन होइ ॥ १४५ ॥

जद्यपि अवनि अनेक हैं, तोयवन्त सर ताल।
रहिमन एकै मानसर, मनसा करत मराल ॥ १४६ ॥

याते जान्यो मन भयो, जरि बरि भस्म बनाइ।
रहिमन जाहि लगाइए, सो रूखो ह्वै जाइ ॥ १४७ ॥

ये रहीम फीके दुवौ, महा जानि सन्तापु।
ज्यों तिय आपन कुच गहै, आपु बड़ाई आपु ॥ १४८ ॥

ये रहीम दर-दर फिरैं, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारौ यारी छोड़ि दो, अब रहीम वे नाहिं ॥ १४९ ॥

यों रहीम सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखिया निरखि, आँखिन को सुख होत ॥ १५० ॥

यों रहीम गति बड़ेन की, ज्यों तुरंग व्यवहार।
दागं दिवावत आपु तन, सही होत असवार ॥ १५१ ॥

यों रहीम दुख-सुख सहत, बड़े लोग सहि साँति।
उवत चन्द्र जेहि भाँति सों, अथवत वाही भाँति ॥ १५२ ॥*

१४६—१-जल-पूर्ण।

१४९—१-भौंरी, छोटी तथा मोटी रोटी।

१५१—१-चोट।

* १५२—देखो दोहा नं० १४।

यों रहीम सुख होत है, उपकारी के अंग।
बाँटनवारे के लगै, ज्यों मेंहदी को रंग ॥ १५३ ॥
यों रहीम जग मारिबो, नैन बान की चोट।
भगत-भगत कोई बचे, चरन-कमल की ओट ॥ १५४ ॥
रहिमन आँटा के लगे, बाजत है दिन-राति।
घिउ सक्कर जे खात नित, तिनकी कहा बिसाति ॥ १५५ ॥
रहिमन कठिन चितान ते, चिन्ता को चित चेत।
चिता दहति निर्जीव को, चिन्ता जीव-समेत ॥१५६॥*
रहिमन छोटे नरन सों, होत बड़ो नहिं काम।
मढ़ो दमामो नहिं बनै. सौ चूहे के चाम ॥ १५७ ॥
रहिमन जा डर निसि परै, ता दिन डर सब कोय।
पल-पल करिकै लागतो, देखु कहाँ धौं होय ॥ १५८ ॥
रहिमन बिद्या बुद्धि नहिं, नहीं धरम जस दान।
भूपर जनम बृथा धरै, पसु बिन पुच्छ बिषान ॥१५९॥+

---

* १५६—संस्कृत का एक श्लोक इसी आशय का है—

चिता चिंता द्वयोर्मध्ये, चिन्तैका हि गरीयसी।
चिता दहति निर्जीवं, चिन्ता दहति सजीवकम् ॥

'भर्तृहरि'

१५९—१-सींग।

+ संस्कृत का एक ऐसा ही श्लोक है—

येषां न विद्या न धनं न दानं
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥

रहिमन राज सराहिए, ससि-सम सुखद जो होइ।
कहा बापुरो भानु है, तप्यो तरैयन[1] खोइ॥ १६०॥
रहिमन भाखत पेट सों, क्यों न भयो तू पीठि।
भूखे मान डिगावही, भरे बिगारत दीठि[1]॥ १६१॥
रहिमन सूधी चाल सों, प्यादा होत वजीर।
फरजी मीर न होइ सकै, टेढ़े की तासीर॥ १६२॥
रहिमन राम न उर धरै, रहत विषय लपटाइ।
पसु खर खात सवाद सों, गुरु गलियाए खाइ॥ १६३॥
रहिमन रिस तैं तजत नहिं, बड़े प्रीति की पौरि[1]।
मूकन मारत आवई, नींद बिचारी दौरि॥ १६४॥
रहिमन कबहुँ बड़ेन के, नहीं गर्व को लेस।
भार धरे संसार को, तऊ कहावत सेस[1]॥ १६५॥
रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारिन हाथ लखि, मद समुझैं सब ताहि॥ १६६॥
रहिमन अब वे बिटप कहँ, जिनकी छाँह गँभीर।
बागन बिच-बिच देखियत, सेंहुड़[1] कंज[2] करीर॥ १६७॥
रहिमन निज मन की बिथा, मन ही राखौ गोय[1]।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोय॥ १६८॥

१६०—१-तारे। १६१—१-निगाह, दृष्टि।

१६४—१-ड्योढ़ी।

१६५—१-शेषनाग, अवशिष्ट।

१६७—१-सेहुँड़ा, एक कटीला पेड़ होता है।

२-लता के आकार का एक कटीला वृक्ष।

१६८—१-गोपन करके, छिपा करके।

रहिमन चुप ह्वै बैठिए, देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहै बेर॥ १६९॥
रहिमन वे नर मरि चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं।
उनते पहिले वे मरे, जिन मुख निकसत नाहिं॥ १७०॥
रहिमन मनहिं लगाय कै, देखि लेहु किन कोइ।
नर को बस करिबो कहा, नारायन बस होइ॥ १७१॥
रहिमन लाख भली करो, अगुनी अगुन न जाइ।
राग सुनत पय पियत हूँ, साँप सहज धरि खाइ॥ १७२॥
रहिमन दानि दरिद्र तर, तऊ जाँचिबै[1] जोग।
ज्यों सरितन सूखा परे, कुवाँ खनावत लोग॥ १७३॥
रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवै सुई, कहा करै तरवारि॥ १७४॥
रहिमन अती न कीजिए, गहि रहिए निज कानि[1]।
सहिंजन अति फूलै तऊ, डार-पात की हानि॥ १७५॥
रहिमन जाचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात।
नारायन हूँ को भयो, बावन आँगुर गात॥ १७६॥
रहिमन धोखे भाव ते, मुख तैं निकसत राम।
पावत पूरन परम गति, कामादिक को धाम॥ १७७॥
रहिमन जो तुम कहत हौ, संगत ही गुन होइ।
बीच उखारी रामसर[1], रस काहे ना होइ॥ १७८॥

१७३—१-याचना, माँगना।

१७५—१-मर्यादा।

१७८—१-यह ऊख के समान ही, बड़े नरकुल के आकार का एक पेड़ होता है जो ऊख के खेत में पैदा होकर भी मीठा नहीं होता।

रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरै, मोती मानुष चून ॥ १७९ ॥
रहिमन रहिबो वा भलो, जौं लगि सील समूच।
सील ढील जब देखिए, तुरत कीजिए कूच ॥ १८० ॥*
रहिमन रहि[1]ला की भली, जो परसै मन लाइ।
परसत मन मैला करै, सो मैदा जरि जाइ ॥ १८१ ॥
रहिमन अँसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ ॥ १८२ ॥
रहिमन साँचे सूर को, बैरी करत बखान।
साधु सराहै साधुता, जती जोषिता[1] जान ॥ १८३ ॥
रहिमन ओछे संग ते, नितप्रति लाभ बिकार[1]।
नीर चुरावै सम्पुटी, मार सहत घरियार ॥ १८४ ॥
रहिमन प्रीति सराहिए, मिले होत रँग दून।
ज्यों हरदी जरदी तजै, तजै सपेदी चून ॥ १८५ ॥
रहिमन खोटी आदि को, सो परिनाम लखाइ।
ज्यों दीपक तम को भखै, कज्जल बमन कराइ ॥ १८६ ॥
रहिमन खोजै ऊख मैं, जहाँ रसन की खानि।
जहाँ गाँठि तहँ रस नहीं, यही प्रीति की हानि ॥ १८७ ॥

---

* १८०—रहीम का ऐसा ही एक और भी दोहा है:—

रहिमन तब तक ठहरिए, दान मान सनमान।
घटत मान जब देखिए, तुरतहि करिय पयान ॥

देखो दोहा नं० २१३।

१८१—१-चना।

१८३—१-स्त्री।

१८४—१-हानि।

रहिमन धागा प्रेम को, मति तोरो चटकाइ।
टूटे से फिरि ना मिलै, मिले गाँठि परि जाइ॥ १८८॥
रहिमन चाक कुम्हार को, माँगे दिया न देइ।
छेदहिं डंडा डारिकै, चहै नाँद लै लेइ॥ १८९॥
रहिमन इक दिन वे रहे, बीच न सोहत हार।
बायु जो ऐसी बहि गई, बीचन परे पहार॥ १९०॥
रहिमन बात अगम्य की, कहन-सुनन की नाहिं।
जो जानत सो कहत नहिं, कहत सो जानत नाहिं॥ १९१॥
रहिमन यहि संसार में, सब सुख मिलत अगोट[1]।
जैसे फूटे नरद[2] के, परत दुहुँन सिर चोट॥ १९२॥
रहिमन सुधि सबते भली, लगै जो बारम्बार।
बिछुरे मानुष फिरि मिलैं, यहै जानि अवतार॥ १९३॥
रहिमन रिस को छाँड़िकै, करौ गरीबी भेस।
मीठे बोलौ नै[1] चलौ, सबै तुम्हारो देस॥ १९४॥
रहिमन कुटिल कुल्हार ज्यों, कै डारै दुइ टूक।
चतुरन के कसकत रहै, चूक समै की हूक॥ १९५॥
रहिमन ओछे के किये, कै तो करि बढ़ि काम।
तीनि पैग बसुधा भई, बामन छुट्यो न नाम॥ १९६॥
रहिमन अपने गोत को, सबै चहत उतसाह।
मृग उछरत आकास को, भूमि खनत बाराह॥ १९७॥

१९२—१-परस्पर के सहारे से।
२-चौसर के खेल में जब दो गोटें एक ही घर में आ जाती हैं तब उनको नरद कहते हैं। जब तक वे एक घर में रहती हैं, तब तक मारी नहीं जा सकतीं।

१९४—१-नम्र होकर।

रहिमन बित्त अधर्म को, जात न लागै बार।
चोरी करि होरी रची, भई छिनक मैं छार ॥१९८॥
रहिमन भैया पेट सों, बहुत कह्यों समुझाइ।
जो तू अनखाये[1] रहै, कत कोऊ अनखाइ[2] ॥१९९॥
रहिमन घरिया रहँट की, त्यों ओछे की दीठि।
रीती[1] सनमुख होति है, भरी दिखावै पीठि ॥२००॥
रहिमन पैंड़ा प्रेम को, जस कूकुर को नार।
डारत मैं सुख होत है, निकसत दुःख अपार ॥२०१॥
रहिमन ओछे नरन ते, तजौ बैर औ प्रीति।
चाटे काटे स्वान के, दुहूँ भाँति बिपरीति ॥२०२॥
रहिमन बिगरी आदि की, बनै न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकास लौं, तऊ बावनै नाम ॥२०३॥
रहिमन कोऊ का करै, ज्वारी चोर लबार।
जो पति-राखन-हार है, माखन-चाखन-हार ॥२०४॥
रहिमन जग जीवन बड़ो, काह न देखे नैन।
जाय दसानन अछत ही, कपि लागे गढ़ लैन ॥२०५॥
रहिमन थोरे दिनन को, कौन करै मुख स्याह।
नहीं छलन को पर तिया, नहीं करन को ब्याह ॥२०६॥
रहिमन करि सम बल नहीं, मानत प्रभु की धाक।
दाँत दिखावत दीन ह्वै, चलत घिसावत नाक ॥२०७॥
रहिमन बहु भेषज करत, ब्याधि न छाँड़त साथ।
खग मृग बसत अरोग बन, हरि अनाथ के नाथ ॥२०८॥

१९९-१—बिना खाये, २-बुरा लगना।

२००—१-खाली।

रहिमन उजरी प्रकृति को, नहीं नीच को संग।
करिया बासन कर गहे, करिखा लागत अंग ॥२०९॥
रहिमन जाके बाप को, पानि न पीवै कोइ।
ताकी गैल अकास मैं, क्यों न कालिमा होइ ॥२१०॥*
रहिमन है सँकरी गली, दूजो ना ठहराहि।
आपु अहै तौ हरि नहीं, हरि तौ अपनो नाहि ॥२११॥+
रहिमन ब्याह बियाधि[1] है, सकहु तौ जाहु बचाइ।
पाँयन बेरी परत है, ढोल बजाइ बजाइ ॥२१२॥
रहिमन तब तक ठहरिए, दान मान सनमान।
घटत मान जब देखिए, तुरतहि करिय पयान ॥२१३॥×
रहिमन सो न कछू गनै, जासों लागैं नैन।
सहिकै सोच बिसाहिए, गयो हाथ को चैन ॥२१४॥
रहिमन प्रीति न कीजिए, जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाँकैं तीन ॥२१५॥

---

* २१०—चन्द्रमा के प्रति रहीम की यह उक्ति है—

कहते हैं कि इसका पिता समुद्र है, जिसका छुआ पानी तक कोई नहीं पीता और वह धरातल में ही अपना घर बनाकर रहता है; परन्तु इसका लड़का चन्द्रमा अपनी मर्यादा उल्लंघन करके अपना मार्ग आकाश में बनाता है, तो फिर कलंकित क्यों न हो।

+ २११—कबीरदास की भी ऐसी ही एक उक्ति है—

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
प्रेम-गली अति साँकरी, तामें दो न समाहिं॥

२१२—१-ब्याधि-आपत्ति।

×२१३—देखो दोहा नं० १८०।

रहिमन असमय के परे, हित अनहित ह्वै जाइ।
बधिक बान सों मृग बध्यो, देते रुधिर बताइ ॥२१६॥*

रहिमन माँगत बड़ेन की, लघुता होति अनूप।
बलि-मख माँगन हरि गये, धरि बामन को रूप ॥२१७॥

रहिमन गठरी धूरि की, रही पवन ते पूरि।
गाँठि जुक्ति की खुलि गई, अन्त धूरि की धूरि ॥२१८॥

रहिमन यह तनु सूप है, लीजै जगत पछोरि।
हलुकन को उड़ि जान दे, गरुए राखु बटोरि ॥२१९॥

रहिमन वहाँ न जाइए, जहाँ कपट को हेत।
हम तन ढारत ढेंकुली, सींचत अपनो खेत ॥२२०॥

रहिमन मारग प्रेम को, बिन बूझे मति जाउ।
जो डिगिहौ तौ फिरि कहूँ, नहिं धरिबे को पाउ ॥२२१॥

रहिमन तीर कि चोट ते, चोट परे बचि जाय।
नैन-बान की चोट ते, धन्वन्तरि न बचाय ॥२२२॥

रहिमन जिह्वा बावरी, कहि गइ सरगपताल[1]।
आपु तौ कहि भीतर भई, जूती खात कपाल ॥२२३॥

---

* २१६—इसका भाव महात्मा सूरदासजी के इस पद में अच्छी प्रकार व्यक्त किया गया है:—

असमय मीत काको कौन !

× × × × ×

बधिक मार्‍यो बान सों मृग कियो कानन गौन।
तन को सोनित भयो बैरी खोजि दीन्हों तौन ॥

× × × × ×

'सूर'

२२३—१-बुरा-भला।

रहिमन पर-उपकार के, करत न पारै बीच।
मास दियो सिबि भूप ने, दीन्ह्यो हाड़ दधीच ॥२२४॥

रहिमन भेषज के किये, काल जीति जो जात।
बड़े-बड़े समरथ भये, तौ न कोऊ मरि जात ॥२२५॥

रन बन ब्याधि बिपत्ति मैं, रहिमन मरै न रोइ।
जो रच्छक जननी-जठर[1], सो हरि गये कि सोइ ॥२२६॥

राम न जाते हरिन सँग, सीय न रावन साथ।
जो रहीम भावी कतहुँ, होति आपने हाथ ॥२२७॥

राम-नाम जान्यो नहीं, भइ पूजा मैं हानि।
कहि रहीम क्यों राखिहैं, जम के किंकर कानि ॥२२८॥

राम-नाम जान्यो नहीं, जान्यो सदा उपादि[1]।
कहि रहीम तेहि आपनो, जनम गवाँयो बादि ॥२२९॥

रीति-प्रीति सब सों भली, बैर न हित मित गोत।
रहिमन याही जनम की, बहुरि न संगति होत ॥२३०॥

रूप कथा[1] पद चारु पट, कंचन दोहा लाल।
ज्यों-ज्यों निरखत अलप[2] त्यों, मोल रहीम बिसाल ॥२३१॥

रूप रहीम बिलोकि तेहि, मन जहँ-जहँ लगि जाय।
थाके ताकहिं आप बहु, लेत छुड़ाय-छुड़ाय ॥२३२॥

२२६—१-माता के पेट म।

२२९—१-बुराई करना।

२३१—१-महात्माओं के उपदेश, २-अलप-छोटे।

लिखी रहीम लिलार में, भई आन की आन।
पद कर काटि बनारसी, पहुँच्यो मगहर थान ॥२३३॥*
वहै प्रीति नहिं रीति वह, नहीं पाछिलो हेत।
घटत-घटत रहिमन घटै, ज्यों कर लीन्हें रेत¹ ॥२३४॥
सदा नगारा कूच का, बाजत आठौ जाम।
रहिमन या जग आइकै, का करि रहा मुकाम ॥२३५॥
सब कोऊ सबसों करैं, राम जुहार सलाम।
हित-अनहित तब जानिए, जा दिन अटकै काम ॥२३६॥
सन्तत सम्पति जानिकै, सबको सब कोइ देइ।
दीनबन्धु बिन दीन की, को रहीम सुधि लेइ ॥२३७॥
समय लाभ सम लाभ नहिं, समय चूक सम चूक।
चतुरन चित रहिमन लगी, समय चूक की हूक ॥२३८॥
समय दसा कुल देखिकै, सबै करत सनमान।
रहिमन दीन अनाथ को, तुम बिन को भगवान ॥२३९॥
सम्पति धरम गँवाइ कै, हाथ रहत कछु नाहिं।
ज्यों रहीम ससि रहत है, दिवस अकासहिं माहिं ॥२४०॥
सरवर के खग एक से, प्रीति बाढ़ि नहिं धीम।
पै मराल को मानसर, एकै ठौर रहीम ॥२४१॥

---

* २३३—कबीरदासजी के जीवन का अधिकांश काशी में ही व्यतीत हुआ था, लेकिन अन्त समय में—मरने के समय वे मगहर चले गये थे। इसी पर रहीमजी ने यह कहा है कि जो अपने प्रारब्ध में होता है वह होकर ही रहता है। काशी ऐसी मोक्ष-दायिनी जगह में अतिकाल तक रहकर भी कबीर को अपने प्राण मगहर जाकर छोड़नेपड़े।

२३४—१-बालू।

सर सूखे पंछी उड़ैं, औरै सरनि समाहिं।
दीन मीन बिन पंख के, कहु रहीम कहँ जाहिं ॥२४२॥
ससि सकोच साहस सलिल, मान सनेह रहीम।
बढ़त-बढ़त बढ़ि जात हैं, घटत-घटत घटि सीम ॥२४३॥
ससि की सीतल चाँदनी, सुन्दर सबहिं सुहाइ।
लगै चोर चित मैं लटी, घटि रहीम मन आइ ॥२४४॥*
सबै कहावत लसकरी, सब लसकर को जाइँ।
सैल सड़ाके जो सहैं, वही जगीरैं खाइँ ॥२४५॥
स्वासहु तुरिय जो उच्चरै, तिय है निहचल चित्त।
पूत परा घर जानिए, रहिमन तीनि पवित्त ॥२४६॥
स्वारथ रूचत रहीम सब, औगुन हूँ जग माहिं।
बड़े-बड़े बैठे लख्यो, पथ-रथ-कूबर छाहिं ॥२४७॥
सीत हरत तम भ्रम मिटत, नैन खुलत बे चूक।
का रहीम रवि को घट्यो, जो नहिं लख्यो उलूक ॥२४८॥
सुलगे जेते बुझि गये, बुझे ते सुलगे नाहिं।
रहिमन दाहे प्रेम के, बूझि-बूझि सुलगाहिं ॥२४९॥
सौदा करो सो करि चलो, रहिमन याही बाट।
फिरि सौदा पैहो नहीं, दूरि जान है बाट ॥२५०॥+

---

* २४४—इसी भाव का एक दोहा 'वृन्द' का भी है:—

जासों जाको हित सधै, सोई ताहि सुहात।
चोर न प्यारी चाँदनी, जैसे कारी रात॥

\+ २५०—एक और दोहा इसी भाव का 'वृन्द' का है:—

या दुनिया में आइकै, छोड़ि देइ तू ऐंठ।
लेना है सो लेइले, उठी जाति है पैंठ॥

हरि रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूर।
खैंचि आपनी ओर को, डारि दियो पुनि दूर ।।२५१।।
हित रहीम इतऊ करै, जाकी जहाँ बसात।
ना यह रहै न वह रहै, रहै कहन को बात ।।२५२।।
होत कृपा जो बड़ेन की, सो कदाचि घटि जाइ।
तो रहीम मरिबो भलो, जाते दुख हटि जाइ ।।२५३।।*
होइ न जाकी छाँह ढिग, फल रहीम अति दूर।
बाढ़ेउ सो बिन काज ही, जैसे तार खजूर ।।२५४।।

सोरठे

इक नाहीं इक पीर, हिय रहीम होती रहै।
कबहुँ न भई सरीर, प्रीति वेदना एक-सी ।। १ ।।
ओछे को सतसंग, रहिमन तजहु अँगार ज्यों।
तातो जारै अंग, सीरे[1] पै कारो करै ।। २ ।।
गई आगि उर लाय, आगि लैन आई जु तिय।

---

* २५३—इसी भाव का इनका दूसरा दोहा भी है:—

बड़माया को दोष यह, जो कबहूँ घटि जाइ।
तौ रहीम मरिबो भलो, दुख सहि जियै बलाइ ।।

देखो दोहा नं० ११२

२—१—ठंढा हो जाने पर।

लागी नाहिं बुझाय, भभकि-भभकि बरिबरि उठै ॥ ३ ॥*
चूल्हा दीन्हों बारि, नातो रह्यो सो जरि गयो ।
रहिमन उतरे पार, भार झोंकि सब भार में ॥ ४ ॥
दीपक हिए छिपाइ, नवल वधू घर लै चली ।
कर बिहीन पछिताइ, कुच लखि निज सीसै धुनै ॥ ५ ॥
पलटि चली मुसकाइ, द्युति रहीम उपजाइ अति ।
बाती सी उसकाइ, मानौ दीन्हीं दीप की ॥ ६ ॥
बिन्दु में सिन्धु समान, को कासों अचरज कहै ।
हेरनहार हिरान, रहिमन आपुहि आपु मैं ॥ ७ ॥+
रहिमन नीर पखान[1], बूड़ै पै सीजै नहीं ।
तैसे मूरुख ज्ञान, बूझै[2] पै सूझै[3] नहीं ॥ ८ ॥
रहिमन कीन्ही प्रीत, साहब को भावै नहीं ।
जिनके अनगिन[1] मीत, हमैं गरीबन को गनै ॥ ९ ॥
रहिमन पुतरी स्याम, मनौ जलज मधुकर लसै ।
कै धौं सालिकराम, रूपे के अरघा धरे ॥ १० ॥
रहिमन जग की रीति, मैं देखा रस ऊख मैं ।
ताहू मैं परतीति, जहाँ गाँठि तहँ रस नहीं ॥ ११ ॥

---

* ३—कविवर मतिराम के एक दोहे में ऐसा ही भाव है—
नैन जोरि मुख मोरि हँसि, नैसुक नेह जनाइ ।
आगि लेन आई जु तिय, मेरे गई लगाइ ॥

नोट—सोरठा नं० ३, ५ और ६ रहीम-कृत एक दूसरी पुस्तक 'शृंगार सोरठ' के कहे जाते हैं ।

+ ७—कहीं-कहीं यही सोरठा अहमद की कविता में भी पाया जाता है केवल 'रहीम' के नाम की जगह पर 'अहमद' का नाम है ।

८—१-पत्थर, २--जानता है, ३--समझता नहीं है ।

९—१--असंख्य ।

बरवै नायिका-भेद

दोहा

कबित कह्यो दोहा कह्यो, तुल्यो न छप्पय छंद।
बिरच्यो यहैं बिचारि कै, यह बरवै रस-कंद[1] ॥ १ ॥

बन्दना—बन्दौं देवि सरदवा[1], पद कर जोरि।
बरनौं काव्य बरैवा, लगइ न खोरि ॥ २ ॥

त्रिविध-स्वकीया

मुग्धा—

लहरत लहर लहरिया, लहर बहार।
मोतिन जरी किनरिया, बिथुरे बार ॥ ३ ॥
लागौ आनि नबेलिअहि, मनसिज बान।
उकसन लागु उरोजवा, दिग[1] तिरछान ॥ ४ ॥

मध्या—

निसुदिन चाहन चाहत, श्री ब्रजराज।
लाज जोरावरि है, बसि करत अकाज ॥ ५ ॥
रहत नैन के कोरवा, चितवनि छाय।
चलत न पगु पैजनिआँ, मगु ठहराय ॥ ६ ॥

प्रौढ़ा—

भोरहि बोलि कोइलिआ, बढ़वति ताप।
घरी एक घरि अलिआ, रहु चुपचाप ॥ ७ ॥

१—१-मूल।

२—१-शारदा-सरस्वती।

४—१-दृग-आँखें।

मुग्धा के भेद

अज्ञात—

कौन रोग दौ[1] छतिआ, उकसयो[2] आइ ।
दुखि-दुखि उठत करेजवा, लगि जनु लाइ ॥ ८ ॥

ज्ञात—

औचक आइ जोबनवा, मोहिं दुख दीन्ह ।
छुटिगो संग गोइअँवाँ[1], नहिं भल कीन्ह ॥ ९ ॥

नवोढ़ा—

पहिरत चूँ[1]नि चुनरिआ, भूषन भाँ[2]व ।
नैनन्हि देत कजरवा, फूलनि-चाँ[3]व ॥ १० ॥

विस्रब्ध-नवोढ़ा—

जंघन जोरति गोरिआ, करति कठोर ।
छुअन न पावै पिअवा, कहुँ कुच-कोर ॥ ११ ॥

× × ×

द्विविध-परकीया

ऊढ़ा—

सुनि धुनि कान मुरलिआ, रागन-भेद ।
गै मन छाँड़त गोरिआ, गनत न खेत ॥ १२ ॥
निसुदिन सासु ननँदिआ, मोहिं घर घेरु ।
सुनन न देत मुरलिआ, ना धुन टेरु ॥ १३ ॥

८—१-दोनों, २-पैदा हो गया ।

९—१-हमजोलियों का-सखियों का ।

१०—१-चुन करके, २-इच्छा, ३--चाह ।

अनूढ़ा—

मोहिं बर जोग कन्हैआ, लागउँ पाँय ।
तुमको पुजउँ देवतवा, होहु सहाय ॥ १४ ॥

परकीया (ऊढ़ा) के ६ भेद

भूत-गुप्ता—

चूनत फूल गुलबवा, डार कटील ।
टुटिगौ बन्द अँगिअवा[1], फटु पट नील ॥ १५ ॥
अब नहिं तोहिं पढ़ावौं, सुगना सार ।
परिगो दाग अधरवा, चोंच तुचार ॥ १६ ॥

भविष्य-गुप्ता—

होइ कत कारि बदरिआ, बरखत पाथ ।
जै हौं घनै[1] अमरइआ[2], संग न साथ ॥ १७ ॥
जै हों चुनन कुसुमिआँ[1], खेत बड़ि दूरि ।
चेरिआ केरि छोकरिआँ[2], मोहिं सँग कूरि ॥ १८ ॥

वचन-विदग्धा—

तोरेसि नाक नथुनिआ, मितै[1] हित नीक ।
कहेसि नाक पहिरावहु, चित दै सींक ॥ १९ ॥

क्रिया-विदग्धा—

बाहर लै कै दिअवा[1], बारन जाइ ।
सासु-ननँद घर पहुँचत, देत बुताइ[2] ॥ २० ॥

१५—१-आँगी-चोली ।

१७—१-पीतम, २-वाटिका ।

१८—१-कुसुम के फूल, २-छोकरी-लड़की ।

१९—१-मीत-मित्र-प्रिय ।

२०—१-दीप, २-बुझा देती है ।

लक्षिता—

आजु नैन के कोरवा, औरै भाँति ।
नागर[1] नेह नबेलिहि, मूँदि न जाति ॥ २१ ॥

मुदिता—

जै हौं कान्ह नेवतंवा[1], भो दुख दून ।
बहू करै रखवरिआ, है घर सून ॥ २२ ॥
नेवते गई ननँदिआ, मैके सास ।
दुलहिनि तोरि खबरिआ, औ पिअ पास ॥ २३ ॥

कुलटा—

जस मदमातल[1] हथिआ, हुमकति[2] जाय ।
चितवत छैल तरुनिआँ[3], मुह मुसुकाय ॥ २४ ॥
चितवत ऊँचि अटरिआ, दाहिनें[1] बामें[2] ।
लाखन लखत बिदेसिआँ[3], है बस काम ॥ २५ ॥

प्रथम अनुसयना—

जमुना-तीर तरुनि अहि, लखि भौ सूल ।
भरिगो कुंज-बेअलिआ[1], फूलत फूल ॥ २६ ॥
ग्रीषम दहत दवरिआँ[1], कुंज - कुटीर ।
तिमि-तिमि तकत तरुनिअहि, बाढ़त पीर ॥ २७ ॥

२१—१-प्रेमी ।

२२—१-नेवते-बुलावे ।

२४—१-मतवाला, २-झूमता हुआ, ३-तरुणी ।

२५—१-२-इधर-उधर, ३-परपुरुष ।

२६—१-कुंज की बेलें-लताएँ तथा बेला ।

२७—१-दावानल ।

द्वितीय अनुसयना—

धीरज धरु किन गोरिआ, करि अनुराग।
जात जहाँ पिअ देसवा, घन बर बाग ॥ २८ ॥
जनि मरु रोइ दुलहिआ[1], करि मन ऊन[2]।
सघन कुंज ससुररिआ, औ घर सून ॥ २९ ॥

तृतीय अनुसयना—

मितवा करनि पसुरिआ, सुमन सपात।
फिरि-फिरि ताकि तरुनिआ, मन पछितात ॥ ३० ॥
मित उतते फिरि आओ. देखि अराम।
मैं न गई अमरैआ, रह्यो न काम ॥ ३१ ॥

× × ×

गणिका

लखि-लखि धनिक नयकवा, बनवति भेख।
रहि गइ हेरि अरसिआँ[1], कजरा रेख ॥ ३२ ॥

अन्य सम्भोग-दुःखिता—

मैं पठई जेहि कजवा, आइस साधि।
छुटिगो सीस जुरबवा, दिढ़ करि बाँधि ॥ ३३ ॥
सखि इत हरवर आवत, भो पथ खेद।
रहि-रहि लेत उससवा, औ तन सेद ॥ ३४ ॥

२९—१-दुलहन-बहू, २-खिन्न।
३२—१-आरसी-स्त्रियों के अँगूठे में पहिनने का एक आभूषण होता है जिसमें ऊपर की ओर एक गोल शीशा लगा रहता है।

रूप-गर्विता—

छीन, मलिन, विष-भइआ, औगुन तीन।
मोहिं कह चन्द-बदनिआ, पिय मति हीन॥ ३५॥*
रातुल[1] भयसि मुगउँआ[2], निरस पखान[3]।
यह मधु-भर[4]ल अधरवा[5], करसि समान॥ ३६॥

प्रेम-गर्विता—

आपुहि देत कजरवा, गूँदत हार।
चुनि पहिराव चुनरिया, प्रान-अधार॥ ३७॥
औरन पाँय जवकवा[1], नाइन दीन।
तुम्हैं अँगोरत गोरिआ, न्हान न कीन॥ ३८॥

× × ×

नायिकाओं के और दस भेद

१—प्रोषितपतिका

मुग्धा-प्रोषितपतिका—

तै अब जासि बेइलिआ[1], जरि-बरि मूल।
बिनु पिय सूल करेजवा, लखि तुव फूल॥ ३९॥

---

* महात्मा तुलसीदासजी के इस दोहे में ऐसा ही भाव है:—
जन्म सिंधु पुनि बंधु बिष, दिन मलीन सकलंक।
सिय-मुख समता पाव किमि, चन्द्र बापुरो रंक॥

३६—१-रंगदार, २-मूँगा, ३-पत्थर, ४-मिठास से भरा हुआ, ५-अधर।

३८—१-जावक-महावर।

३९—१-बेलि-बेला।

मध्या-प्रोषितपतिका—

का तुव मंजु लतिअवा, झलरति जाय ।
पिअ बिन मन हुड़कइयां, मोंहिं न सुहाय ॥ ४० ॥

प्रौढ़ा-प्रोषितपतिका—

कासनं कहउँ सँदेसवा, पिअ परदेसु ।
लागेउ चइत न फूले, तेहि बन टेसु ॥ ४१ ॥

२—खण्डिता

मुग्धा-खण्डिता—

सखि सिख सीख नवेलिआ, कीन्हेसि मान ।
पिय लखि कोप भवनवाँ, ठानेसि ठान ॥ ४२ ॥
सीस नवाइ नवेलिया, निच[1]वा जोइ ।
छिति[2] ख[3]नि छोर छिगुनिआ, सुसुकँ[4]न रोइ ॥ ४३ ॥

मध्या-खण्डिता—

ठगि गो पीअ पलँगिआ, आलस पाइ ।
पौढ़हु जाइ बरोठवा, सेज बिछाइ ॥ ४४ ॥
पोछेहु अनंख कजरवा, जावक भाल ।
उपटेउ पीतम छतिया, बिन गुन माल ॥ ४५ ॥

प्रौढ़ा-खण्डिता—

पिय आवत अगनइआ, उठि कै लीन्ह ।
बिहसत चतुर तिरिअवा, बैठन दीन्ह ॥ ४६ ॥

४०—१-मन के हुड़कानेवाली-याद दिलानेवाली ।

४१—१-किससे ।

४३—१-नीचे की ओर, २ भूमि, ३ खोदती हैं, ४ भीतर ही भीतर ।

४५—१ अनखानेवाला ।

परकीया-खण्डिता—

जेहि लगि सजन सनेहिया, छुट घर बार।
अपने होत पिअरवा, साँच परार ॥ ४७ ॥
पौढ़हु पीअ पलँगिआ, मींजउँ पाय।
रैनि जगे कर निंदिआ, सब मिटि जाय ॥ ४८ ॥

गणिका-खण्डिता—

मितवा ओठ कजरवा, जावक भाल।
लिहेसि काढ़ि बरिअँइआ, तकि मनिमाल ॥ ४९ ॥

३—कलहान्तरिता

मुग्धा-कलहान्तरिता—

आयहु अबहिं गवनवाँ, तुरतहि मान।
अब रस लागि गोरिअवा, मन पछितान ॥ ५० ॥

मध्या-कलहान्तरिता—

मैं मति मन्द तिरिअवा, परेलेउँ भोरि।
ते नहिं कन्त मनवलेउँ, तोहिं कछु खोरि ॥ ५१ ॥

प्रौढ़ा-कलहान्तरिता—

थकि गौ करि मनुहरिआ, फिरि गौ पीव।
मैं उठि तुरत न लायउँ, हिमकर हीव ॥ ५२ ॥

परकीया-कलहान्तरिता—

जेहि लगि कीन बिरोगवा, ननद जेठानि।
लीन न लाइ करेजवा, तेहि हित जानि ॥ ५३ ॥

४९—१ बरजोरी से।

५०—१ गवना।

५१—१ कर दिया, २ मनाया।

५२—१ मन को प्रसन्न करने की।

गणिका-कलहान्तरिता—

जेहि दीन्हे बहु बेरिया, मोहिं मनि-माल ।
तेहते रूठेउँ सखिआ, फिरि गौ लाल ॥ ५४ ॥

४—विप्रलब्धा

मुग्धा-विप्रलब्धा—

मिलेउ न कन्त सहेटवा[1], लखेउ डेराइ ।
धनिआ[2] कमल बदनिआ, गौ कुमिलाइ ॥ ५५ ॥

मध्या-विप्रलब्धा—

लखेसि न केलि-भवनवाँ, नन्द - कुमार ।
लै-लै ऊँचि उससवा, ह्वइ बिकरार[1] ॥ ५६ ॥

प्रौढ़ा-विप्रलब्धा—

देखि न कन्त सहेटवा, भो दुख पूरि ।
रोवत नैन कजरवा, ह्वै गौ दूरि ॥ ५७ ॥

परकीया-विप्रलब्धा—

बैरिनि मह अभिसरवा, अति दुखदानि ।
तापर मिल्यो न मितवा, भो पछितानि ॥ ५८ ॥

गणिका-विप्रलब्धा—

करिकै सोरह सिंगरवा, अतर लगाइ ।
मिलेउ न लाल सहेटवा, फिरि पछिताइ ॥ ५९ ॥

५—उत्कंठिता

मुग्धा-उत्कण्ठता—

गौ जुग[1] जाम[2] जमिनिआँ[3], पिय नहिं आइ ।
राखेहु कौन सवतिआ, धौं बिलमाइ ॥ ६० ॥

५५—१--एकान्त स्थान । २--नायिका ।

५६—१--बेकल ।

६०—१--दो, २--घड़ी, ३--रात्रि ।

मध्या-उत्कण्ठिता--

जोहत[1] परी पलँगिश्रा, पिय कै बाट ।
बेचेउ चतुर तिरिश्रवा, धौं केहि हाट ॥ ६१ ॥

प्रौढ़ा-उत्कण्ठिता--

पिय-पथ हेरति गोरिश्रा, भो भिनुसार[1] ।
चलहु न करिहि तिरिश्रवा, तुव इतबार ॥ ६२ ॥

परकीया-उत्कण्ठिता—

उठि-उठि जात खिरकिया, जोहन बाट ।
कत वह आइहि मितवा, सूनी खाट ॥ ६३ ॥

गणिका-उत्कण्ठिता—

कढ़ि न नींद भिनुसरवा, आलस पाइ ।
धन दै मूरुख मितवा, रहल लोभाइ ॥ ६४ ॥

६—बासकसज्जा

मुग्धा-बासकसज्जा—

हरुए[1] गवन नवेलिश्रा, डीठि बचाइ ।
पौढ़ी जाइ पलँगिश्रा, सेज बिछाइ ॥ ६५ ॥

मध्या-बासकसज्जा—

सेज बिछाइ पलँगिश्रा, अंग सिंगार ।
चितवत चौंकि तरुनिश्रा, दै दिग-द्वार ॥ ६६ ॥*

६१—१--देखती है ।

६२—१--तड़का-सबेरा ।

६५—१--हलके-हलके-चुपके-चुपके ।

* कविवर मतिराम के इस दोहे का भाव इस बरवै से बहुत कुछ मिलता-जुलता है :—

सुन्दरि सेज सँवारि कै, सब साजे सिंगार ।
दृग कमलन के द्वार पर, बाँधे बन्दनवार ॥

प्रौढ़ा-बासकसज्जा—

हँसि-हँसि हेरि अरसिश्रा, सहज सिंगार।
उतरत चढ़त नबेलिश्रा, पिय कै बार ॥ ६७ ॥

परकीया-बासकसज्जा—

सोवत सब गुन लोगवा, जानेउ बाल।
दीन्हेसि खोलि खिरकिया, उठिकै हाल ॥ ६८ ॥

गणिका-बासकसज्जा—

कीन्हेसि सबै सिंगरवा, चातुर बाल।
ऐहै प्रान पियरवा, लै मनि-माल ॥ ६९ ॥

७—स्वाधीनपतिका

मुग्धा-स्वाधीनपतिका—

आपुहि देत जवकवा, गहि-गहि पाँइ।
आपु देत मोहि पिश्रवा, पान खवाइ ॥ ७० ॥

मध्या-स्वाधीनपतिका—

पीतम करत पिश्ररवा[1], कहल न जात।
रहत गढ़ावत सोनवा, यहै सिरात ॥ ७१ ॥

प्रौढ़ा-स्वाधीनपतिका—

नैं अरु मोर पिश्ररवा, जस जल-मीन।
बिछुरत तजत परनवाँ[1], रहत अधीन ॥ ७२ ॥

७१—१-प्यार।
७२—१-प्राण।

परकीया-स्वाधीनपतिका—

भौ जुग नयन चकोरवा, पिअ मुखचन्द।
जानति है तिअ अपने, मोहि सुख-कन्द॥ ७३॥

गणिका-स्वाधीनपतिका—

लै हीरन कै हरवा, मोतिन माल।
मोहि रहत पहिरावत, बसि ह्वै लाल॥ ७४॥

८—अभिसारिका

मुग्धा-अभिसारिका—

चलीं लवाइ नवेलिअहि, सखि सब संग।
जस हुलसत गो गोदवा, मत्त मतंग॥ ७५॥

मध्या-अभिसारिका—

पहिरे लाल अछुअवा, तिअ गज-पाय।
चढ़िकै नेह-हथियवा, हुलसत जाय॥ ७६॥

प्रौढ़ा-अभिसारिका—

चली रइ[1]नि अधि[2]अरिआ, साहस गाढ़ि।
पाँयन केरि कर्कारिआ, डारेसि काढ़ि॥ ७७॥

परकीया-कृष्णाभिसारिका—

नील मनिन के हरवा, नील सिंगार।
किए रइनि अंधिअरिआ, धनि अभिसार॥ ७८॥

परकीया-शुक्लाभिसारिका—

सेत कुसुम के हरवा, भूषन सेत।
चली रैनि उजिअरिआ, पिय के हेत॥ ७९॥

७७—१--रात्रि, २--आधी के करीब।

दिवा-अभिसारिका—

पहिरि बसन जरितरिआ, पिअ के हेत।
चली जेठ दुपहरिया, मिलि रवि जोति ॥ ८० ॥

गणिका-अभिसारिका—

धंन-हित कीन्ह सिंगरवा, चातुर बाल।
चली संग लै चेरिआँ, जहँवा लाल ॥ ८१ ॥

६—प्रवत्स्यत्प्रेयसी

मुग्धा-प्रवत्स्यत्प्रेयसी—

परिगौ कानन सखिआ, पिअ को गौन।
बैठी कनक पलँगिआ, होइकै मौन ॥ ८२ ॥

मध्या-प्रवत्स्यत्प्रेयसी—

सुठि सुकुमार तरुनिआ, सुनि पिअ गौन।
लाजनि पौढ़ि ओबरिआँ, ह्वै कै मौन ॥ ८३ ॥

प्रौढ़ा-प्रवत्स्यत्प्रेयसी—

बन घन फूलि टेसुइआ, बगियन बेलि।
तब पिअ चलेउ बिदेसवा, फागुन फैलि ॥ ८४ ॥

परकीया-प्रवत्स्यत्प्रेयसी—

मितवा चलेउ बिदेसवा, मन अनुरागि।
पिअ की सुरति गगरिया, रहि मग लागि ॥ ८५ ॥

८०—१-जड़ाऊ।

८१—१-पीतम, २-चेरी-दासी।

८३—१-अन्दर-घर के भीतर की कोठरी।

८४—१-टेसू।

गणिका-प्रवत्स्यत्प्रेयसी—

पीतम एक सुमिरिनिआं[1], मोंहि दै जाहु।
जेहिं जपि तोर बिरहवा[2], करब निबाहु॥ ८६॥

१०–आगतपतिका

मुग्धा-आगतपतिका—

बहुत दिना पर पिअवा, आयउ आजु।
पुलकित नवल बधुइआ, कर घर-काजु॥ ८७॥

मध्या-आगतपतिका—

पिअवा पौरि दुअरवा, उठि किन देखु।
दुरलभ पाइ बिदेसिआ, जिअकै लेखु॥ ८८॥

प्रौढ़ा-आगतपतिका—

जोबन प्रान पिअरवा, हेरेउ आइ।
तलफत मीन तिरिअवा, जस जल पाइ॥ ८९॥

परकीया-आगतपतिका—

पूछत चली खबरिया, मितवा[1] तीर।
नैहर खोज तिरिअवा, पहिरि सुचीर॥ ९०॥

गणिका-आगतपतिका—

तौं लगि मिटै न मितवा, तन की पीर।
जौं लगि पहिरि न छतिआ, नख-नग-चीर॥ ९१॥

८६—१--सुमिरिनी-माला, २--बिरह।
९०—१--पीतम।

पुनः त्रिविध नायिका-भेद

उत्तमा—

लखि अपराध नयकवा, नहिं रिस कीन्ह।
बिहँसत चँदन-चउकियंा, बैठन दीन ॥ ६२ ॥

मध्यमा—

बिन गुन पिअ उर हरवा, उपटेउ हेरि।
चुप ह्वै चित्र-पुतरिया, रहि चख फेरि ॥ ६३ ॥

अधमा—

बार-बार गुरु[1] मनवा[2], जनि करु नारि।
मानिक औ गजमोतिआ, जौं लगि बारि ॥ ६४ ॥

× × ×

सखी के काम

मण्डन—

सखिअन कीन सिंगरवा, रचि बहु भाँति।
हेरत नैन अरसिआ, मुख मुसकाति ॥ ६५ ॥

शिक्षा—

थके बैठि गोड़वँरिआ, मींजहु पाँउ।
पिअ तन पेखि गरमिया, बिजन डोलाउ ॥ ६६ ॥

उपालंभ—

चुप ह्वै रह्यो सँदेसवा, सुनि मुसुकाय।
पिअ निज हाथ बिरँवना दीन, पठाय ॥ ६७ ॥

६२—१--चन्दन की चौकी।

६४—१--भारी, २--मान।

६६—१--पैरों के पास, २ -हवा।

६७—१--बीरा-पान।

परिहास—

बिहँसत भौंह चढ़ाए, धनुष मनोज ।
लावत उर अबलनिआँ[1], ऐंठि उरोज ॥ ९८ ॥

× × ×

दर्शन

साक्षात्-दर्शन—

बिरहिनि और बिदेसिआ, भौ एक ठौर ।
पिअ मुख तकत तिरिअवा, चन्द चकोर ॥ ९९ ॥

चित्र-दर्शन—

पिअ मूरति चित-सरियां[1], देखत बाल ।
बितवत अवधि बसरवा[2], जपि-जपि माल ॥ १०० ॥

श्रवण-दर्शन—

आयउ मीत बिदेसिआ, सुनु सखि तोर ।
उठि किन करसि सिंगरवा, सुनि सिख मोर ॥ १०१ ॥

स्वप्न-दर्शन—

पीतम मिलेउ सपनवाँ, भौ सुख-खानि ।
आनि जगायसि चेरिआ, भइ दुख-दानि ॥ १०२ ॥

× × ×

नायक

लक्षण—

सुन्दर चतुर धनिकवा[1], कुल को ऊँच ।
केलि-कला परबिनवा[2], सील समूच ॥ १०३ ॥

९८—१--सुकुमार स्त्री ।

१००—१--चित्रसारी, २--दिन ।

१०३—१--नायक, २--प्रवीण-चतुर ।

पति उपपति बैसिकवा, त्रिविध बखानि।
बिधि सों ब्याह्यो गुरुजन, पति सो जानि ॥ १०४ ॥

पति—

लैकै सुघर पुरुषवा, पिअ के साथ।
छपरो एक छतरिआ, बरखत पाथ ॥ १०५ ॥

उपपति—

झाँकि झरोखे गोरिआ, आँखिन जोर।
फिरि चितवति चित मितवा, करत निहोर ॥ १०६ ॥

बैसिक—

जनु अति नील अँलकिया[1], बनसी[2] लाय।
मो मन बार बधुअवा, मीन बझाय[3] ॥ १०७ ॥

चतुर्विध-पति

अनुकूल—

करत नहीं अपरधवा; सपनेहुँ पीव।
मान करै को सधवा, रहिगौ जीव ॥ १०८ ॥*

दच्छिण—

सब मिलि करैं निहोरवा, हम कहँ देइ।
गुहि-गुहि चम्पक टँड़िआ, उचइ सो लेइ ॥ १०९ ॥

१०७—१-अलकैं-बाल, २--बसी-मछली फाँसने का काँटा, ३--फाँस करके।

१०८—* मतिराम के इस दोहे का भाव ठीक ऐसा ही है:—

सपने हूँ मन भावतो, करत नहीं अपराध।
मेरे मन ही में रही, मान करन की साध ॥

१०९—१--बाहुओं में पहिनने का आभूषण।

धृष्ट—

जहँवा जगे रइनिआँ, तहवाँ जाउ ।
चोरि नयन निरलजवा, कत मुसकाउ ॥ ११० ॥

शठ—

छूट्यो लाज गरिअवा, औ कुल-कानि ।
करत रोज अपरधवा, परि गइ बानि ॥ १११ ॥

पुनः चतुर्विध-नायक

क्रियाचतुर-नायक—

खेलत जानिसि टोलिआ, नन्दकिसोर ।
छुइ बृषभानु-कुँअरिआ, होइगो चोर ॥ ११२ ॥

वचनचतुर-नायक—

सघन कुंज अमरैआ, सीतल छाँहि ।
झगरति आइ कोइलिआ, फिरि उड़ि जाहि ॥ ११३ ॥

मानी-नायक—

अब न जनम भरि सखिआ, ताकौं ओहि ।
ऐंठत गो अभिमनवा, तजिकै मोहि । ११४ ॥

प्रोषित-नायक—

करिबै ऊँचि अटरिआ, तिअ सँग केलि ।
कबधौं पहिरि गजरवा, हार चमेलि ॥ ११५ ॥

इति बरवै नायिका-भेद समाप्त ।

११२—१-अपने टोले में ।

मदनाष्टक

[१]

मनसि मम नितान्तम् आयकैं बासु कीया ।
तन-धन सब मेरा मान तैं छीन लीया ॥
अति चतुर मृगाक्षी देखतैं मौन भागी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

[२]

बहति मरुत मन्दम् मैं उठी राति जागी ।
शशिकर-कर लागें सेल ते पैन बागी * ॥
अहह विगत स्वामी क्या करौं मैं अभागी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

[३]

हर नयन हुताशम् ज्वालया जो जलाया ।
रति-नयन जलौघैं खाख बाकी बहाया ॥
तदपि दहति चित्तम् मामकम् क्या करौंगी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

[४]

विगत घन निशीथे चाँद की रोशनाई ।
सघन वन निकुंजे कान्ह बंसी बजाई ॥
सुत पति गतनिद्रा स्वामियाँ छोड़ भागीं ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

---

* "शशि-कर कर लागे सेज को छोड़ भागी ।"

[५]

हिम ऋतु रतिधामा सेज लोटौं अकेली ।
उठत बिरह-ज्वाला क्यों सहौं री सहेली ॥
चकित नयन बाला तत्र निद्रा न लागी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

[६]

कमल मुकुल मध्ये राति को ऐ सयानी !
लखि मधुकर बंधम् तू भई री दिवानी ॥
तदुपरि मधुकाले कोकिला देखि भागी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

[७]

तव बदन मयकी ब्रह्म की चोप बाढ़ी ।
मुख कवँ लखि भूपै चाँद ते कांति गाढ़ी ॥
मदन-मथित रंभा देखतै मोहि भागी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

[८]

नभसि घन घनान्ते है घनी कैसि छाया ।
पथिक जन बधूनाम् जन्म केता गँवाया ॥
इति वदति पठानी मन्मथांगी विरागी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

नगर-शोभा-वर्णन *

आदि रूप की परम द्युति, घट-घट रही समाइ।
लघु मति ते मो मन रसन, अस्तुति कही न जाइ॥

उत्तम जाति बराह्मनी, देखत चित्त लुभाइ।
परम पाप पल में हरत, परसत वाके पाँइ॥
परजापति परमेस्वरी, गंगा रूप समान।
जाके अंग-तरंग में, करत नैन असनान॥
रूप रंग रतिराज में, खतरानी इतरानि।
मानो रची विरंचि पचि, कुसुम कनक में सानि॥
पारस पाहन की मनो, धरे पूतरी अंग।
क्यों न होइ कंचन बहू, जो बिलसै तिहि संग॥
कबहुँ दिखावै जौहरनि, हँसि हँसिमानिकलाल।
कबहूँ चख ते च्वै परे, टूटि मुक्त की माल॥
जद्यपि नैननि ओट है, बिरह चोट बिन घाइ।
पिय-उर पीरा ना करै, हीरा-सी गड़ि जाइ॥
कैथिन कथन न पारई, प्रेम-कथा मुख वैन।
छाती ही पाती मनो, लिखे मैन के सैन॥
बरुनि-बार लेखनि करै, मसि काजर भरि लेय।
प्रेमाखर लिखि नैन ते, पिय बाँचन को देय॥

---

* अपूर्ण। देखो भूमिका-भाग।

बनिआइन बनि आइ कै, बैठि रूप की हाट।
प्रेम पैक तन हेरि कै, गरुवे तारत बाट॥
गरब तराजू करत चख, भौंह मोरि मुसक्यात।
डाँड़ी मारत बिरह की, चित-चित घटि जात॥

भाँटा बरन सु काजरी, बेचे सोवा साग।
निलज भई खेलत सदा, गारी दै-दै फाग॥
हरी-भरी डलिया निरखि, जो कोई नियरात!
झूठे हू गारी सुनत, साँचे हू ललचात॥

करै न काहू की सका, सकिनि जोबन रूप।
सदा सरम जल ते भरी, रहै चिबुक के कूप॥
सजल नैन वाके निरखि, चलत प्रेम-सर फूट।
लोक-लाज उर धाक ते, जात मसक-सी छूट॥

धुनि आइन धुनि रैनि-दिन, धरै सुरति की भाँत।
वाको राग न बूझही, कहा बजावै ताँत॥
काम पराक्रम जब करै, छुवत नरम ह्वै जाय।
रोम-रोम पिय के बदन, रूई-सी लिपटाय॥

निसि-दिन रहै ठठेरनी, राजे माँजे गात।
मुकता वाके रूप को, थारी पै ठहरात॥
आभूषण बसतर पहिरि, चितवत पिय-मुख-ओर।
मानो गढ़े नितंब कुच, गड़वा डार कठोर॥

खानख़ाना-कृत बरवै

बन्दहुँ बिघन-विनासन, ऋधि-सिधि-ईस ।
निर्मल बुद्धि-प्रकासन, सिसु ससि-सीस ॥
सुमिरहुँ मन दृढ़ करिकै, नन्दकुमार ।
जो वृषभानु-कुमारि के, प्रान-अधार ॥

भजहुँ चराचर-नायक, सूरज देव ।
दीन जनन-सुखदायक, त्यारन एव ॥
ध्यावहुँ सोच-बिमोचन, गिरिजा-ईस ।
नागर भरन त्रिलोचन, सुरसरि सीस ॥
ध्यावहुँ बिपति-बिदारन, सुवन - समीर ।
खलदानव-बन जारन, प्रिय रघुबीर ॥
पुनि-पुनि बन्दहुँ गुरु के, पद जलजात ।
जेहि प्रसाद ते मन के, तिमिर नसात ॥

उलहे नये अँकुरवा, बिन बलबीर ।
मानहु मदन महिप के, बिन पर तीर ॥
बेद पुरान बखानत, अधम उधार ।
केहि कारन करुनानिधि, करत बिचार ॥

लखि पावस ऋतु सजनी, पिय परदेस ।
गहन लग्यो अबलन पै, धनुष सुरेस ॥
बिरह बढ़्यो सखि अंगन, बढ़्यो चबाउ ।
कर्‌यो निठुर नँदनंदन, कौन -कुदाँउ ॥

हौं लखि हौं री सजनी, चौथि मयंक।
देखौं केहि विधि हरिसे, लगै कलंक॥
कहा छलत हौ ऊधो, दै परतीति।
सपने हू नहिं बिसरे, मोहन मीत॥

घेरि रह्यो दिन-रतिया, बिरह बलाय।
मोहन की वह बतियाँ, ऊधो हाय॥
निरमोही अति झूँठो, साँवर गात।
चुभी रहत चित को धौं, जानि न जात॥

जब तब मोहन झूठी, सौहैं खात।
इन बातन ही प्यारे, चतुर कहात॥
जान कहत हो ऊधो, अवधि बताय।
अवधिअवधि लौं दुस्तर, परत लखाय॥

गये हेरि हरि सजनी, बिहँसि कछूक।
तबते लगनि आदि की, उठत भबूक॥
जब ते मोहन बिछुरे, सुधि कछु नाहिं।
रहे प्रान पर पलकन, दृग मग माहिं॥

उन बिन कौन निबाहै, हित की लाज।
ऊधो तुमहूँ कहियो, धनि ब्रजराज॥
रे मन भजि निसिबासर, श्री बलबीर।
जो बिन जाँचे टारत, जन की पीर॥

सबै कहत हरि बिछुरे, उर धर धीर।
बौरी बाँझ न जानै, ब्यावर पीर॥

लखि मोहन की बंसी, बड़ सी जान ।
लागत मधुर प्रथम पै, बेधत प्रान ॥

काह कान्ह ते कहनो, सब जग साखि ।
कौन होत काहू के, कुबरी राखि ॥

लोग लुगाई हिलिमिलि, खेलत फाग ।
पर्‌यो उड़ावन मोको, सब दिन काग ॥

आँखिन देखत सब ही, कहत सुधारि ।
पै जग साँची प्रीति न, चातक टारि ॥

मैं गुजर दई दिलरा, बे दिलदार ।
इक-इक साअनहुम चूं, साल हजार ॥

गरकिज मैं शुद आलम, चन्द हजार ।
बे दिलवर के गीरद, दिल मकरार ॥

दिलवर जहतर जिगरम, तीर निगाह ।
तपीअ ज्यों मैं आयद, हर दम आह ॥

के गोयम अह बालम, पैश निगार ।
तनहा बजरन आयद, दिल लाचार ॥*

———

* यह पुस्तक भी अपूर्ण है। देखो भूमिका-भाग।

खेट-कौतुकम् *

श्लोक

यत्पादपङ्कजरेणोः प्रसादमासाद्य सर्वभुवनेषु ।
प्रणमामीष्टसुमूर्तिं तामहममराः प्रभुत्वतां यान्ति ॥ १ ॥

जिनके चरणकमल-धूलि के प्रसाद से देवता सम्पूर्ण लोकों में बड़ाई पाते हैं, उन अपने इष्टदेव कृष्णचन्द्र को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥

कर्मविलाधशालए नरोहि बामुरौवतः ।
सदाबली च साबिरः सुकर्मकृद्यदा भवेत् ॥ २ ॥

जिसकी कुण्डली के तीसरे स्थान में चन्द्रमा हो वह मनुष्य सन्तोषी, शीलवान्, बली और अच्छे कामों का करनेवाला होता है ॥ २ ॥

मुश्तरी यदि भवेद् ज़रखाने,
बुज़रुगः परमपुण्यमतिः स्यात् ।
कामिलः कनकसूनुतुयुतश्च,
खूबरोहि मनुजो ज़रदारः ॥ ३ ॥

जिसके दूसरे घर में बृहस्पति हो वह बड़ा पुण्यात्मा और श्रेष्ठ पुरुष होता है तथा पुत्र, सोना और धन-धान्य से युक्त होता है ॥ ३ ॥

---

* इस पुस्तक के पाँच श्लोक नमूने के तौर पर दिये गये हैं। यह प्राप्य है और प्रकाशित भी हो चुकी है।

आयुखाने चश्मखोरा मालखाने मुश्तरी।
राहु जो पैदाबखाने शाह होवे मुल्क का ॥ ४ ॥

जिसके आठवें शुक्र, दूसरे बृहस्पति हों और राहु लग्न में हो वह राजा होता है ॥ ४ ॥

रवी शत्रुखाने पड़ै उच्च का।
करै खाक दौलत फिरै जाबजा ॥ ५ ॥

सूर्य यदि मेष-राशि का होकर कुंडली के छठे घर में पड़ जाय तो धन को नाश करके मनुष्य को मारा-मारा फिराता है ॥ ५ ॥

रहीम के स्फुट हिन्दी-छन्द

जेंहि कारन बार न लाये कछू, गहि संभु सरासन द्वै जु किया। गये गेहहि त्यागि कै ताही समै, सो निकारि पिता बनबास दिया ॥ कहै बीच रहीम रह्यो न कछू, जिन कीन्हो हुतो बिनहार हिया। विधियों न सिया सुखबार सिया, को सवार सिया पिय सार सिया ॥ १ ॥

दीबो चहै करतार जिन्हैं सुख, सो तौ रहीम टरै नहिं टारे। उद्यम कोऊ करौ न करौ, धन आवत आपही हाथ पसारे ॥ देव हँसे सब आपुस में, विधि के परपंच न जाहिं निहारे। बेटा भयो बसुदेव के धाम, औ दुंदुभी बाजत नन्द के द्वारे ॥ २ ॥

जाति हुती सखि गोहन मैं, मनमोहन को लखिकै ललचानो। नागरि नारि नई ब्रज की, उनहूँ नँदलाल को

रीझिबो जानो ॥ जाति भई फिरि कै चितई तब, भाव रहीम यहै उर आनो । ज्यों कमनैत दमानक में फिरि, तीर सों मारि लै जात निसानो ॥ ३ ॥

सीखी है ऐसी रहीम कहा, इन नैन अनोखे धौं नेह की नाधन । ओट भए रहते न बनै, कहते न बनै बिरहानल राधन । पुन्यन प्यारे सों भेंट भई जुपै, भो न कुसंग मिल्यो अपराधन । स्याम-सुधानिधि आनन की, मरिए सखि सूधे चितैबे की साधन ॥ ४ ॥

कवित्त

बड़ेन सों जान पहिचान कै रहीम काह जोपै करतार ही न सुख देनहार है । सीत-हर सूरज सों प्रीति कियो पंकज ने, तऊ कंज-बनन को जारत तुषार है । छीरनिधि-बीच धँस्यो संकर के सीस बस्यो, तऊ ना कलंक नस्यो ससि मैं सदा रहै । बड़े रीझवार हैं, चकोर दरबार हैं, कलानिधि के यार, तऊ चाखत अँगार है ॥ ५ ॥

अति अनियारे मनौ सान दै सुधारे, महा विष के विषारे ये करत पर तान हैं । ऐसे अपराधी देख अगम अगाधी यहै साधना जो साधी हरि हिय में अन्हात हैं । बार-बार बोरे याते लाल-लाल डोरे भए, तौ हूँ तो रहीम थोरे बिधि ना सकात हैं । घाइक घनेरे, दुखदाइक हैं नेरे, नित नैन-बान तेरे उर बेधि-बेधि जात हैं ॥ ६ ॥

पट चाहै तन मेट चाहत छदन, बन, चाहत सुघन जेती सम्पदा सराहबी । तेरोई कहाय कै रहीम कहै दीनबन्धु,

आपनी बिपत द्वार जाय काके काहबी । पेट-भरि खायो चाहै, उद्यम बनायो चाहै, कुटुम जिवायो चाहै, काढ़ि गुन लाहबी । जीविका हमारी जो पै औरन के कर डारो, ब्रज में बिहारी तौ तिहारी कहा साहबी ॥ ७ ॥

रहीम के दो पद

छबि आवन मोहनलाल की ।

काछे काछनि कलित मुरलि कर पीत पिछौरी साल की ॥
बंक तिलक केसर को कीन्हें द्युति मानौं बिधु बाल की ।
बिसरत नाहिं सखी मो मन सों चितवनि नैन बिसाल की ॥
नीकी हँसनि अधर सधरनि छबि छीनी सुमन गुलाब की ।
जलसों डारि दियो पुरइनि पै डोलनि मुकतामाल की ॥
आप मोल बिन मोलनि डोलनि बोलनि मदन गोपाल की ।
यह सरूप निरखै सोइ जानै यहि रहीम के हाल की ॥ १ ॥

कमलदल नैननि की उनमानि ।

बिसरत नाहिं मदनमोहन की मन्द-मन्द मुसकानि ॥
दसनन की द्युति चपला हूँ तैं चारु चपल चमकानि ।
बसुधा की बस करी मधुरता सुधा-पगी बतरानि ॥
चढ़ी रहै चित उर बिसाल की मुकतमाल लहरानि ।
नृत्य समय पीताम्बर की वह फहरि-फहरि फहरानि ॥
अनुदिन श्रीबृन्दाबन ब्रजतैं आवन-आवन जानि ।
छबि रहीम चिततैं न टरति है सकल स्याम की कानि ॥ २ ॥

रहीम के स्फुट संस्कृत-छन्द

आनीता नटवन्मया तव पुरः श्रीकृष्ण याः भूमिकाः ।
व्योमाकाशखखांबराब्धिवसुवत् त्वत्प्रीतयेद्यावधि ॥
प्रीतस्त्वं यदि चेन्निरीक्ष्य भगवन् मत्प्रार्थितं देहि मे ।
नोचेन्मानय मानयेति च पुनर्मामीदृशीभूमिकाः ॥ १ ॥

हे श्रीकृष्ण, तुम्हें प्रसन्न करने के लिए नट की तरह मैंने अब तक चौरासी लाख भिन्न-भिन्न स्वरूप तुम्हारे सामने उपस्थित किए। अब नानाविध अभिनयों को देखकर यदि आप प्रसन्न हों, तो जो माँगूँ, दे डालिए। यदि नहीं, तो कह दो कि फिर कभी ऐसे अभिनय मत करो।

रत्नाकरोस्ति सदनं गृहिणी च पद्मा ।
किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय ॥
राधागृहीतमनसे मनसे च तुभ्यम् ।
दत्तं मया निजमनस्तदिदं गृहाण ॥ २ ॥

हे जगदीश्वर, रत्नाकर-सरीखे अक्षय रत्न-कोष में आपका स्थान है और लक्ष्मी आपकी गृहिणी है। तो फिर बताइए कि आपके लिए अब क्या वस्तु देने योग्य रह गई। हाँ आपका मन आपके पास नहीं है—अर्थात् राधिकाजी ने आपके मन को चुरा लिया है, इसलिए आप आजकल मन-विहीन हो गये हैं—वही मैं आपको देता हूँ। इसे स्वीकार करिए।

अहल्या पाषाणः प्रकृतिपशुरासीत् कपिचमू ।
गुहोऽभूच्चांडालस्त्रितयमपि नीतं निजपदम् ।
अहं चित्तेनाश्मः पशुरपि तवार्चादिकरणे ।
क्रियाभिश्चांडालो रघुवर न मामुद्धरसि किम् ॥ ३ ॥

प्रार्थना-मिस रहीम रामचन्द्रजी से निवेदन करते हैं कि अहल्या पत्थर थी; कपि-सेना स्वभाव से ही पशु थी; गुह चांडाल था; इन तीनों को ही आपने उद्धार करके अमर-पद दिया है । रहीम कहते हैं कि यही तीनों बातें मुझमें आ गई हैं—अर्थात् मैं बहुत कठोर हृदय होने से चित्त से तो पत्थर हूँ, आपकी पूजा-अर्चना-विहीन होने से पशु के ही तुल्य हूँ तथा मेरे कर्म इतने निषिद्ध हैं कि मैं सहज ही में चांडाल की पदवी को प्राप्त हो सकता हूँ—तो फिर आप मेरा उद्धार क्यों नहीं करते ?

यद्यात्रया व्यापकता हता ते,
भिदैकता, वाक्परता च स्तुत्या ।
ध्यानेन बुद्धेः परता परेशम्,
जात्या जनान्दन्तुमिहार्हसि त्वम् ॥ ४ ॥

हे भगवन् ! मैंने आपका बड़ा भारी अपराध किया है । क्योंकि मैंने इधर-उधर घूम-फिरकर आपकी सर्वव्यापकता को, भेद से एकता को, स्तुति करके आपकी वाक्परता को, ध्यान करके बुद्धि से दूर होने को तथा जाति निश्चय करके आपके अजातिपने को नाश कर दिया है । इससे हे भगवन्, मेरे अपराधों को क्षमा करो ।

दृष्ट्वा तत्र विचित्रतां तरुलताम्, मैं था गया बाग में ।
काचित्तत्र कुरंगशावनयना, गुल तोड़ती थी खड़ी ॥
उन्मद्भ्रूधनुषा कटाक्षविशिखैः, घायल किया था मुझे ।
तत्सीदामि सदैव मोहजलधौ, हे दिल गुजारो शुकर ॥ ५ ॥

वृक्षों और लताओं की विचित्रता की बहार देखने के लिए मैं एक दिन वाटिका में गया था । क्या देखता हूँ कि वहाँ सामने एक मृगनयनी फूल चुन रही है । उसने जरा सी आहट में अपने चंचल भौंह-रूपी धनुष के दृष्टि-कोण-रूपी बाण से मुझे ऐसा घायल किया कि मैं उसके मोह-सागर में फँसकर आज तक दुःख पाता हूँ । रहीम इतना हो जाने पर भी अपने चित्त को आश्वासन देकर कहते हैं कि उसको धन्यवाद दो कि इतने ही में खैर हो गई । नहीं तो, नहीं मालूम, क्या गजब हो गया होता ।

एकस्मिन्दिवसावसानसमये. मैं था गया बाग में ।
काचित्तत्र कुरंगबालनयना, गुल तोड़ती थी खड़ी ॥
तां दृष्ट्वा नवयौवनां शशिमुखीं, मैं मोह में जा पड़ा ।
नो जीवामि त्वया विना श्रृणु प्रिये, तू यार कैसे मिले ॥ ६ ॥

रहीम एक दिन सायंकाल के समय घूमते-फिरते एक बाग में जा पहुँचे । देखा कि आज फिर एक बालनायिका फूल चुन रही है। उस चन्द्रमुखी, नवयौवन-सम्पन्ना को देखकर उसके मोह में वे फिर फँस गये। जब उससे कुछ और बस न चला तो कहते हैं कि हे प्रिये !

अब तेरे विना मेरा जीना नहीं हो सकता, बताओ अब तुम कैसे मिल सकती हो ।

अच्युतचरणतरंगिणी, शशिशेखरमौलिमालतीमाले ।
मम तनुवितरणसमये, हरता देया, न मे हरितः ॥ ७ ॥

इसका अर्थ रहीम ने स्वयम् एक दोहे में किया है । दोहा इस प्रकार है—

अच्युत-चरन-तरंगिनी, सिव-सिर-मालतिमाल ।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो इन्दव-भाल ॥

समाप्त ।

[illegible]